Year 16, Issue 62
April – June, 2019

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR-PUBLISHER : Dr. Sneh Thakore - Awarded By The President Of India
Limka Book Record Holder

कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

संपादन व प्रकाशन
डॉ. स्नेह ठाकुर
भारत के राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत
लिम्का बुक रिकॉर्ड होल्डर

वर्ष १६ - अंक ६२, अप्रैल - जून २०१९

लहू के फूल

पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

मेरे देश
मेरे महान् देश,
तेरी रजत-सी रज में
लोट-लोट कर
मैंने शैशव के
निष्पाप क्षणों को खेला
तेरे पावन पवन में
साँसें लेकर
यौवन के मादक भार को झेला

तेरे अन्न-जल से
शैशव-सुमन
जवानी का
चट्टानी फूल बन गया
और रणभूमि में
बलिदानी धूल बन गया

मेरे देश
आज मैं
राष्ट्र-मंदिर में
निज यौवन के ताजे फूल अर्पित करता हूँ
राष्ट्र की अर्चना में
अपने लहू के फूल
समर्पित करता हूँ

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : डॉ. स्नेह ठाकुर

(पोस्ट-डॉक्टरल फ़ेलोशिप अवार्डी)

(भारत के राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति भवन में "हिन्दी सेवी सम्मान" से सम्मानित)

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
भारतीय सेना के शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि	डॉ. स्नेह ठाकुर	२
हम भारतवासी, हम भारतवंशी	डॉ. स्नेह ठाकुर	३
विंग कमान्डर अभिनन्दन	डॉ. स्नेह ठाकुर	४
सम्पादकीय		५
स्वतंत्रता का उल्लास, विभाजन की त्रासदी	पद्मविभूषण लालकृष्ण आडवाणी	१३
यह तुम तो नहीं	अनुप्रिया	२०
हिन्दी व साहित्य सम्बन्धी अवधारणा	पं. केशरी नाथ त्रिपाठी	२२
रामजी के आँसू	डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता	२५
संचित भूख	पद्मश्री डॉ. नरेन्द्र कोहली	२७
तेरा है	पद्मश्री अशोक चक्रधर	३३
राष्ट्रभाषा का सवाल सुलझाना होगा	प्रो. गिरीश्वर मिश्र	३४
मर्द	चित्रा मुद्गल	३७
ऋतुचक्र	मनोरमा तिवारी	३८
गुलज़ार : मेरे अपने	उमेश मेहता	४०
हाथ छूटे भी तो....	गुलज़ार	४२
तोताराम का अर्थ आवर	रमेश जोशी	४३
लहू के फूल	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि	१अ
डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार		४४अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00, भारत - रु. ६००.००

डाक द्वारा By Mail $35.00, International Mail $40.00

Website: http://www.Vasudha1.webs.com, kavitakosh.org/vasudhapatrika

e-mail: dr.snehthakore@gmail.com

DR. SNEH THAKORE
Awarded by The President of India
Post-Doctoral Fellowship Awardee
EDITOR-PUBLISHER
"VASUDHA"
A CANADIAN PUBLICATION
SINCE 2004
Limka Book Record Holder

DIRECTOR
INTL. R.C. UNIVERSITY
BELGRADE (Canada Chapter)

FELLOW
Research Foundation International
Affiliated to UNO

CHAIRPERSON CANADA
World Forum Dialouge

PATRON: HINDI CENTER
New Delhi

PRESIDENT
Goodwill Hindi Literary Asso.

Address:
16 Revlis Crescent
Toronto,
Ont. M1V-1E9, Canada
Tel. 416-291-9534
E-mail
dr.snehthakore@gmail.com
Website:
http://www.Vasudha1.webs.com

"भारतीय सेना के शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि"

प्रवासी भारतीय, कवयित्री, लेखक एवं "वसुधा" हिन्दी साहित्यिक पत्रिका के सम्पादक-प्रकाशक के रूप में, "वसुधा" से जुड़े सभी की ओर से मैं, अपनी गौरवशाली भारतीय सेना के, त्याग के मनोभाव से परिपूर्ण हमारी सीमाओं के संरक्षक, देशप्रेमी परम वीर शहीदों को अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहती हूँ.

भारतीय सेना के इन सपूतों ने धरती माँ को अपने लहू से रक्त-रंजित कर, दर्द की संवेदना से भरे सभी भारतीय एवं प्रवासी भारतीयों को पीड़ित कर, आँसुओं के सैलाब में डुबो, एकता के सूत्र में बाँध दिया है.

वैसे तो अमर होकर कोई भी नहीं जन्मा, पर वतन पर शहीद होने वाले मर कर भी कभी मरते नहीं. उनके बलिदानों की गाथाएँ उन्हें अमर बना देती हैं.

इन्हीं अमर सपूतों को नम आँखों से भाव-भीनी ये पंक्तियाँ अर्पित करते हुए उन्हें श्रद्धावनत् नमन करती हूँ.

भवदीया,

(डॉ. स्नेह ठाकुर)

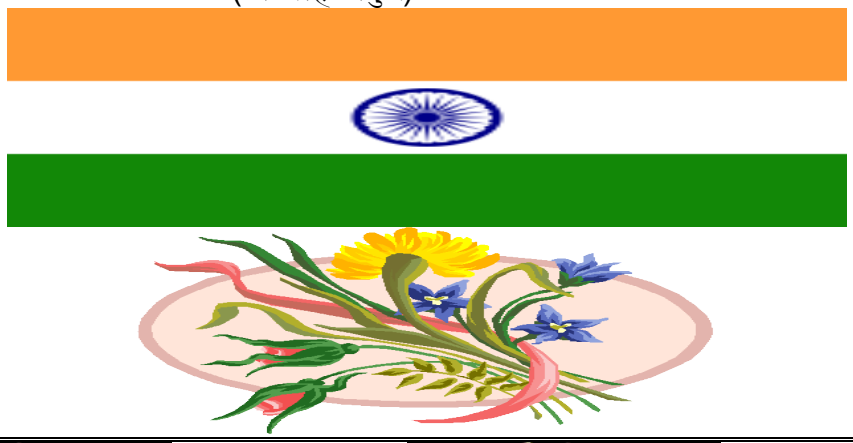

हम भारतवासी, हम भारतवंशी

डॉ. स्नेह ठाकुर

कदमों से कदम मिला
कंधे से कंधा मिला
चलते हैं हम ऐसे जब
दुश्मन के दिल हिलते हैं तब।

रोकें चाहे आँधियाँ, ज़मी या आसमाँ हमें
पाना है लक्ष्य हमे हर हाल में
हिम्मत से चलें, धरती हिले कदमों तले
क्या दूरियाँ, क्या फ़ासले, मंजिल लग जायेगी गले।

चलना है हमें सुबह-शाम
रुकना, झुकना नहीं हमारा काम
अब तो यही रास्ता है अपना
पहचान ले, यही सपना है अपना।

आगे ही आगे बढ़ते जाना है
विध्वंस-बादल बन संहार करना है
शोला बन आग उगलना है
दुश्मन के छक्के छड़ाना है।

आये हैं रण-प्रांगण में, लिये जान हथेली पे
मोड़ें कलाई मौत की, है हिम्मत हममें
रण-बाँकुरे, हम पहुँचेंगे मंजिल पे
हो जा होशियार, हम हैं आसमाँ की बुलन्दी पे।

हम अपनी सरहदों की लौह दीवार हैं
दुश्मनों को हरदम खदेड़ने को तैयार हैं
पछताओगे ताकत हमारी आज़मा के तुम
ऐ गीदड़, सियारों, न डालो हमारी माँ पे बुरी नज़र तुम।

माँ के दूध का कर्ज़ चुकाना हमें आता है
माँ के चरणों की कसम खा, सर काटना तुम्हारा हमें आता है
भारत-माँ की संतान हम, तुम्हें समझाना हमें आता है
अपनी माँ के चरणों में शीश तुम्हारा झुकाना हमें आता है।

पुरुखों का शौर्य, बन लहू बहता हमारी रगों में
झुकता नहीं यह शीश कभी किसी के आगे
हम भारतवासी हैं, राणा प्रताप, वीर छत्रपति शिवाजी
हर नारी यहाँ की है, रण-बाँकुरी झाँसी रानी लक्ष्मीबाई।

भरा पड़ा है इतिहास हमारा वीर प्रतापों से
हम हैं गर कोमल सुमन-से, तो सशक्त लौह-तार से
तोड़ देंगे दुश्मन की ग्रीवा कमल-नाल-सी, फोड़ देंगे कपाल उसका
हम हैं दोस्तों के दोस्त, पर बरपाते दुश्मनों पर कहर बड़ा।

ऐ आक्रमणकारियों भाग जाओ दुम दबा के यहाँ से
क्यों शेर की माँद में आते हो जान-बूझ के !
माँ की सुरक्षा का भार निभाना जानते हैं हम सभी
जन-जन भारत का चने चबवायेगा तुम्हें हर क्षण ही।

हम भारतवासी, हम भारतवंशी
कदमों से कदम मिला
कंधे से कंधा मिला
चलते हैं हम ऐसे जब
दुश्मन के दिल हिलते हैं तब
हम भारतवासी, हम भारतवंशी
जय हिन्द, जय भारती

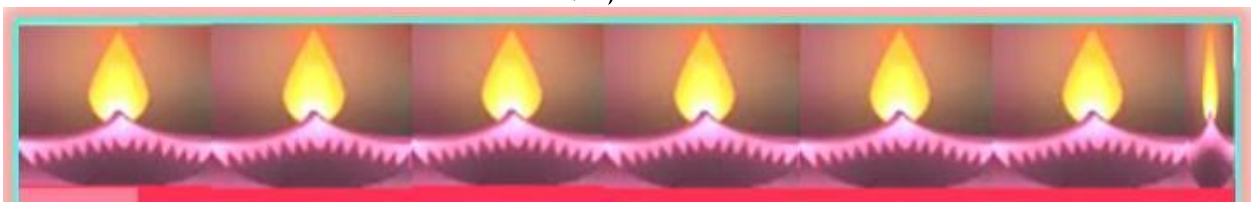

विंग कमान्डर अभिनन्दन

डॉ. स्नेह ठाकुर

कैसे करें अभिनन्दन का अभिनन्दन
जो स्वयं ही है अभिनन्दन, उसका अभिनन्दन!
प्रधानमंत्री के शब्दानुसार जिसने बदल दिया
शब्द-कोष में अभिनन्दन का अर्थ
गगनचारी सम्राट वीरता की प्रतिमूर्ति
भारत का सम्मान बढ़ाने वाले देश के गौरव
विंग कमांडर अभिनन्दन को
प्रवासी भारतीयों की ओर से
"वसुधा" की ओर से
अनन्य शुभाशीष -
सम्पादक "वसुधा"

सम्पादकीय

दिसम्बर २७, २०१८ को मैंने अपने जीवन की अमूल्य निधि पति श्री सत्य पाल ठाकुर का सांसारिक पार्थिव साहचर्य खो दिया. अभी तक "वसुधा" के जीवन-काल में उनके निर्णय से ही मैं व्यक्तिगत सन्दर्भों की अभिव्यक्ति से दूर रही हूँ, पर आज उनका जाना आप सब पाठकों से साँझा करना, ठाकुर साहब के वसुधा के जनक एवं उसके संरक्षक के रूप में आवश्यक हो जाता है. यद्यपि कि यह ठाकुर साहब की शालीनता, सौजन्यता ही थी कि उन्होंने इस दिशा में, इस रूप में कभी भी कोई श्रेय नहीं लिया, केवल और केवल नि:स्वार्थ भाव से ही हिन्दी की सेवा में समर्पित रहे.

आज उनका जाना आप सबसे साँझा करना इसलिए भी आवश्यक हो जाता है कि आप में से बहुत से लेखक एवं पाठक उनसे व्यक्तिगत रूप से परिचित थे, और आप सबका सद्भाव उन्हें सदा प्राप्त होता रहा. उनका इस नश्वर संसार से विदा होना इतना आकस्मिक था कि वह हम सभी स्वजनों को इतना अचम्भित कर शोकाकुल कर गया कि हम अभी तक इस सदमें से उभर ही नहीं पा रहे हैं, जिनको भी किसी भी सूत्र से पता चला उनकी सम्वेदनाओं का न आभार ही प्रकट कर पाए और ना ही अन्य प्रियजनों को सूचना ही दे पाए.

वसुधा के जन्म के प्रेरणा-स्त्रोत ठाकुर साहब ही थे – विवाहोपरांत ही मैं उन्हें ठाकुर साहब के सम्बोधन से ही सम्बोधित करती आ रही हूँ – और साथ ही वसुधा के लालन-पालन, विशेष-रूप से उसके जीवन का महत्वपूर्ण आर्थिक भार उठाने में ठाकुर साहब का बहुत बड़ा हाथ रहा है. उनके जाने के कुछ हफ़्ते पहले वसुधा से संदर्भित एक वार्तालाप में मेरे मुख से अनायास ही निकल गया कि अब कदाचित् "वसुधा" बंद कर दूँ. भगवान् की कृपा से बहुत सालों से, जनवरी २००४ से चल रही है पर अब इतना काम नहीं हो पा रहा है – टाइप, टाइप-सैटिंग, डिजाइनिंग आदि "वसुधा" के सम्पादन/प्रकाशन से सम्बंधित सभी छोटे-बड़े काम करते हुये अब उम्र के इस पड़ाव में कुछ थकने-सी लगी हूँ, कि न जाने कौन-सी अदृश्य शक्ति, दैवीय शक्ति अनायास ही उन के अंत:करण में पैठ, उनके मुख से मुझे अचम्भित करने वाले ये शब्द कहलवा गई – "न, न, वसुधा कभी बंद मत करना. वसुधा का सम्पादन/प्रकाशन और अपना साहित्य लिखना कभी बंद न करना. चाहे जो हो जाए तुम वसुधा और अपना लिखना-पढ़ना चालू रखना."

आज ठाकुर साहब को अकस्मात् दिया गया वचन, उनकी अनुपस्थिति में भारी मन से ही सही, श्रद्धापूर्वक निभाने का पूर्ण प्रयास कर रही हूँ.

"लिखना-पढ़ना" से संदर्भित बात मेरे द्वारा लिखे जाने वाली साहित्यिक पुस्तकों से थी. विशेष रूप से उपन्यास "लोक-नायक राम" के उपरान्त उनका विशेष आग्रह कि मैं अब रावण के बारे में उपन्यास लिखूँ. पर मन:स्थिति कुछ ऐसी बनी कि उपन्यास "श्रीरामप्रिया सीता" का सृजन आरम्भ हो गया. पर फिर उनके विशेष आग्रह पर तदोपरान्त "दशानन रावण" का सृजन भी आरम्भ हुआ.

ठाकुर साहब एक ऐसा व्यक्तित्त्व, जिसने मेरे व्यक्तित्व को निखारा है. एक ऐसा व्यक्तित्त्व जिसने असम्भावनाओं में सम्भावनाएँ दिखायी हैं. एक ऐसा व्यक्तित्त्व जिसने बड़ी से बड़ी बुराई में कुछ अच्छाई दिखाने का प्रयास किया है. एक ऐसा व्यक्तित्त्व जो हर हाल में मेरी रीढ़ की हड्डी बन, हर अच्छे-बुरे क्षण में मुझे सुकर्म पथ पर अग्रसर होने का परामर्श देता रहा. इसी महान् व्यक्तित्व के धनी, आदरणीय एवं प्रिय पति श्री सत्य पाल ठाकुर की पुण्य-स्मृति को अपना नवीनतम उपन्यास "दशानन रावण" भी सादर, सस्नेह समर्पित कर रही हूँ जिन्होंने "दशानन रावण" के अकल्पनीय पाण्डित्व, शिव-भक्ति निष्ठा, अपूर्व, अपरिमेय गुण, पर साथ ही किस प्रकार उनका अहंकारजनित उपयोग उसे विनाशपथ पर ले आया – के चरित्र का चिंतन-मनन कर चित्रण करने की ओर प्रेरित किया. उनकी प्रेरणा का साकार रूप उन्हें समर्पित करते हुये मन आकुल-व्याकुल हो उठा है क्योंकि वे इस पूर्णाकृति को नहीं देख पायेंगे. जहाँ हृदय में इतना संतोष है कि "दशानन रावण" की पाण्डुलिपि

ठाकुर साहब के जीवन-काल में प्रकाशनाधीन थी, वहीं यह मलाल कि काश! वे अपनी इस अभिलाषित कृति को प्रकाशित रूप में भी देख पाते! यह कटुसत्य कचोटता है और अंत तक सदैव कचोटता रहेगा कि "दशानन रावण" की प्रकाशित कृति उनके हाथों में सादर न सौंप सकी. पर विधि का विधान, नियति को यह मंजूर नहीं था. मृत्यु बिना दस्तक दिये, बिन आहट, दबे पाँव, बिन पग-धवनि, हवा का एक झोंका बन अचानक उनके सूक्ष्म शरीर को, उनकी आत्मा को अपना वर्चस्व स्थापित करते हुये, बिन अवरोध अपने गतिमान पंखों पर बैठा महाप्रयाण-पथ पर अग्रसर होने हेतु उड़ा ले गयी, यह सन्देश देते हुये कि वास्तव में जीवन कितना क्षणभंगुर है, पल-प्रति-पल केवल और केवल परमेश्वर के अधीन है, अन्य किसी भी नियंत्रण से परे है.

जिनके अस्तित्व में मेरा अस्तित्व समाया हुआ है और अब उनका अस्तित्व मेरे हृदय में समाया हुआ है – ऐसे ठाकुर साहब की पुण्यात्मा को, इस विश्वास के साथ कि वह आशीर्वाद-स्वरूप निरन्तर हमारे पुत्रों के एवं उनके माध्यम से अपने सभी वंशजों के अंतर्मन में निवास करते हुये, ज्योतिर्स्वरूप हमारी आत्मा में बसे, मेरा और हमारे अंशों-वंशजों का सदा-सर्वदा मार्गदर्शन करते रहेंगे - "दशानन रावण" एवं वसुधा का यह अंक श्रद्धांजलि-स्वरूप सादर, सस्नेह समर्पित कर रही हूँ.

यदि उपन्यास "दशानन रावण", यह पुस्तक पाठकों के मन को छूती है तो इसका सम्पूर्ण श्रेय ठाकुर साहब को जाता है, मैं केवल निमित्त मात्र हूँ. ठाकुर साहब मेरे लिए एवं अपने सभी परिचितों के लिए एक ऐसा व्यक्तित्व हैं जिन्होंने न केवल अपने परिवार में सुबह से रात तक हर परिस्थिति में व्यवहृत अभिवादन के लिए, वरन् इस जगत् के हर सम्बन्धों के प्रत्येक अभिवादन में प्रयोग के लिए हर समय "राम-राम जी" का उद्घोष उच्चारित किया. ऐसे राममय व्यक्तित्व ने नीर-क्षीर विवेकी श्रीराम की महिमा के गुणगान हेतु, जो अधर्म प्रवृत्त दशानन रावण के न केवल दोषों को ही ध्यान में रख उसकी अभ्यर्थना करते हैं, वरन् उसके गुणों की महत्ता भी स्वीकार कर मानव-मात्र को नीर-क्षीर विवेकी होने का सन्देश भी देते हैं, को माध्यम बना इस पुस्तक के निर्माण का स्वप्न देखा है.

उपन्यास "लोक-नायक राम" के उपरांत, जिसका सौभाग्यवश चतुर्थ संस्करण भी प्रकाशित हो गया है, उनका विशेष आग्रह था कि मैं अब रावण संदर्भित उपन्यास लिखूँ. पर उस समय मन:स्थिति कुछ ऐसी बनी कि उपन्यास "श्रीरामप्रिया सीता" का सृजन आरम्भ हो गया. पर हाँ! "दशानन रावण" की परिकल्पना भी इस दौरान मन-मष्तिष्क में करवटें लेती रही और "श्रीरामप्रिया सीता" के उपरांत "दशानन रावण" का सृजन आरम्भ हो गया. और अब अंतत: परमेश्वर के चरण-कमलों में समर्पित पति और पति के चरण-कमलों में समर्पित यह कृति "दशानन रावण" जहाँ अवलोकनार्थ पाठकों के कर-कमलों में सस्नेह अर्पित कर रही हूँ, वहीं परमेश्वर से प्रार्थना है कि वे "वसुधा" के जनक की हिन्दी के प्रचार-प्रसार उन्नयनपूरित सदिच्छापूर्ति हेतु "वसुधा" के सम्पादन/प्रकाशन में 'वसुधा" के सभी लेखकों, पाठकों, शुभ-चिंतकों के सहयोग को अक्षुण्ण बनाये रख मुझे इसके आगामी अंकों के सम्पादन/प्रकाशन की क्षमता प्रदान करें. क्योंकि इतने महीनों के उपरांत भी "वसुधा" का यह अंक प्रकाशित करना और अपना लिखना-पढ़ना सहजता से नहीं कर पा रही हूँ; पर हाँ! उन्हें अनजाने ही दिये गये वचन के अनुरूप चरैवेति....चरैवेति....एक के बाद एक कदम आगे बढ़ाने के प्रयास में संलग्न हूँ.

आज जहाँ सब कुछ इतना व्यक्तिगत लिख रही हूँ तो अब प्रथमत: जो उनके बारे में लिखा गया वह, तत्पश्चात् दोनों पुत्रों ने, हमारे अंशों ने, अपने आदरणीय एवं प्रिय पिताश्री एवं दादाश्री के प्रति अपनी युलॅज़ि, स्तवन में जो विचार व्यक्त किये, जो भाव-भीनी श्रद्धांजलि दी, उसे भी यहाँ प्रकाशित कर रही हूँ, जो अँग्रेज़ी भाषा में हैं. उस समय ठाकुर साहब के अनेकानेक भारतीय मित्रों के साथ-साथ, यहाँ ५० वर्षों के निवास में बने

उनके अनेक अँग्रेज़ कनेडियन मित्र भी उपस्थित थे जो हिन्दी नहीं समझ सकते थे, तथापि वहाँ उपस्थित सभी अँग्रेज़ी भाषा से भिज्ञ थे. अत: बच्चों ने अँग्रेज़ी में अपनी बात कही.

Satya Pal Thakore

November 22, 1934 - December 27, 2018

Satya Pal Thakore passed away suddenly on Thursday December 27th, 2018 at the age of 84. He will be missed by many, but none more than his wife of nearly 54 years, Sneh, his sons Sanjeev and Amit, his daughters-in-law, Moira and Cindy, and his grandchildren Madison-Richa, Brianna-Asha, Bryce-Rishi, Jacob and Jamie.

Born in India on November 22nd, 1934, he was one of 7 children in his family and he lived his life without compromise for his adventurous 84 years.

Satya and Sneh settled outside of London, UK during the early years of their marriage and his career started with a job at British Airways where he took full advantage of his newfound access to travel the world. Soon after their move to London, they had their first child, Sanjeev.

After visiting Montreal for Expo in 1967, the family thirst for adventure once again took hold and they moved to High Park and he attended the University of Toronto to obtain his teaching degree.

With degrees in hand, the family once again uprooted to Manitoulin Island in Northern Ontario. Satya and Sneh began their teaching careers in the aboriginal community of Wikwemikong where they had their second child, Amit.

Satya continued to teach in Wiky for over a decade while the family moved to nearby Manitowaning. While Manitoulin Island bore little if any resemblance to his homeland in India, he was undaunted in looking to experience life from yet another perspective. He quickly learned

that the key to social integration on the island was found in keeping his doors open to all and obsessively watching Hockey Night in Canada. He even went so far as to annually build an outdoor rink at his house, to the delight of his children and everyone else in Manitowaning. This led to a terribly short, but successful, career as a minor hockey coach despite a profound inability to skate.

After a short stay in Wiarton, Ontario, Satya and Sneh left their teaching careers behind for yet another adventure. The family returned to Toronto, this time settling in Scarborough to open an Indian grocery store. As with everything he did, he went all in to ensure this next stage of his adventure was a success. The family ran the business for over a decade which provided the opportunity to re-connect with their roots and integrate into a number of cultural and social initiatives.

The family eventually sold the grocery store and Satya and Sneh entered retirement. True to form, this was yet another excuse to continue their adventurous ways. Free from the demands of running a business, they could once again travel and set off globe-trotting, which always included an annual trip to India to reconnect with family and friends. At home, they devoted themselves to cultural groups in their community and their growing family.

At each stop along the way, Satya sought to gain every experience he could, which he knew meant embracing and learning from those around him. He committed himself to his communities which led to lasting friendships across the globe. He valued each of those friendships even as he moved on to different places and adventures.

In lieu of flowers, the family would be grateful if you could make a donation to the Heart and Stroke Foundation. Should you wish, donations can be made using the 'Make a Donation' tab below.

अपने आदरणीय एवं प्रिय पिताश्री के प्रति छोटे सुपुत्र अमित ठाकुर की भावभीनी अभिव्यक्ति-श्रद्धांजलि -

I wanted to first thank everyone for coming today to celebrate the life of my dad together. And also to those who could not attend but have shared their kind thoughts with us over the last few days.

My dad was a principled man whose adherence to principles defined him throughout his life. He believed in punctuality, a one handed backhand in tennis, and the nutritional benefits of lentils. I stand before you a living embodiment of his failure in those regards.

Dad loved tennis. When I was 5, he taught me the game. Backhands were a challenge which I overcame by simply switching hands with my racket so that I would have two forehands. I was actually quite good at it and it kept our rallies going for a while. The disappointment he exhibited haunts me to this day. I later compensated by developing a reliable two handed backhand. Bearing in mind this was the early 80's but I'd like to think I brought him some joy by being the daughter he never had.

Dad was more successful at instilling other virtues. He wasn't one for rationalizations or ambiguity. There was a right way to do things and if you approach life with the required respect for honesty, you knew it. Anything short of that was, to him, simply an excuse.

Inexperience or unfamiliarity was not an impediment to Dad. He was fearless. As you may know, my dad ran for every conceivable political office during our time in Toronto. I can say without hyperbole that he was extremely successful at securing the votes of all eligible voters within the household. The broader community posed a greater challenge.

Underlying all of Dad's actions was his unwavering desire to provide for and support us. My brother and I grew up on Manitoulin Island. It was an era before cable television reached the island and we were limited to three channels. We were able to read the Toronto Star provided we were satisfied with getting Thursday's paper on Friday morning. Come wintertime, the options to keep the idle hands of children busy largely whittled down to one thing, hockey.

Dad knew what he had to do. Despite not having a clue how to do it, every winter he would be out in the dead of night carving out the banks and standing with a garden hose to make an outdoor rink for Sanjeev and I along with all of our friends. Then he would spend the rest of the winter making sure Mom had a bucket of salted boiling water to address the inevitable frostbite sufferers making their way inside.

When it came time to leave Manitoulin Island, Dad faced staunch opposition from a bratty 7 years old with a remarkably well thought out plan to be left behind to live off the bounty of the Manitoulin wilderness. Dad did not shrink in the face of this challenge and the bratty 7 years old was packed away with all of the other family belongings and set off for Wiarton.

Wiarton was lovely. We lived in a beautiful home on the main street which, for those of you who care to visit, has now become a balloon store. But Dad faced a dilemma. Sanjeev would soon be off to university. For other families, this natural progression of life would simply play out by shipping Sanjeev off wherever he may wish and converting his bedroom to a playroom for their adorable other child. But that was not Dad. He simply would not consider sending his son off to school without his family being there to support him.

Some might say leaving a career he had to that point dedicated his life to, and incidentally came with a steady pay-cheque and weekends and summers off, behind in favour of uprooting the family to open a business with no actual business experience, all in the course of one summer, was, well, crazy. I honestly don't think a doubt ever entered Dad's mind that this was the right thing to do. Even in the face of vociferous opposition from a bratty 8 years old with an unhealthy fondness for groundhogs, Dad remained unphased.
Dad worked every day in that store to make sure that Mom, Sanjeev and I had everything we needed to thrive. No matter what it meant, he would make any and every sacrifice needed to be there for us.

There are a lot of things I can say about my dad but most important to me is that I want to say thank you to him. Thank you for providing for us. Thank you for being an example of the person I continue to strive to be both in my own life and as a father to my two kids. Thank you for the

life you've allowed me to live through your dedication, hard work and sacrifice. I love you Dad. Thank you.

अपने आदरणीय एवं प्रिय पिताश्री के प्रति बड़े सुपुत्र संजीव ठाकुर की भावभीनी अभिव्यक्ति-श्रद्धांजलि -

Sub se pahley, hum sub ko bahut-bahut shukriaa bolna chahte hain aaj ke lie. Hamari Hindi bahut jada achchi nahi hai aur phir yahan bahut se English speaking log bhi hain, islie hum English me bol rahe hain.

For those that did not understand my Hindi, I apologize but I wanted to say a few words in Hindi, as broken as it is, for dad. For those that may not understand my English as I try and speak of my father, I am sorry, but Is probably easier to understand my English than my Hindi.

First of all, thank you very much to everyone from all of us, Mom, Amit, myself and Dad. Thank you for being there for our family, not only today, not just the past week, but all the other times. Thank you for allowing dad to be a part of your lives as much as ours and I know he appreciated that. Grieving is difficult enough but the love, friendship and support you all have shown has helped us tremendously in dealing with our loss. I would be remiss if I did not say thank you to my family for your love and everything you have done and still do for me, especially in this trying time. I know I have not been the easiest to deal with over the past few days, you may say longer than that, but you have all been there for me as you always have. I am sorry for making this about me at times as I know it is as difficult for you but thank you. Family is the essence of life and I am so lucky to be with you. Moira, Madison, Brianna and Bryce, thank you from the bottom of my heart.

Dad, while your body has left us, your spirit will never leave us. Not only that, there is a bit of you in both of Amit and I. Many of you have seen through the pictures during the viewing the resemblance between my brother and pictures of my father in his earlier days. Dad, you also graced Amit with your height, and to me you gave me your belly. It's been 53 years and I'm still trying to slim down and I have to say, I would have preferred the height instead. You had a love for world politics which is another trait you passed on to Amit. As for me, you decided that we would share your hair, or lack thereof. One thing that you passed on to me and not Amit was a rebirth of your minor hockey coaching career. I was all excited to talk about it but Amit, you lessened my ability to boast a little about that when you mentioned Dad's profound inability to skate in your memorial to him. As I read that line, my son Bryce, who unfortunately has had me as his coach for the past couple of years, just shook his head and chuckled, now I get it dad, that explains a lot. You're just like grandpa, you can't skate very well either.

I remember talking to Dad back then why he coached because he never played the game. He said to me back then that it was not about the hockey, he was teaching us about life and working hard and what it took to be a successful team. He said that I would not understand what he was trying to do back then, but hopefully I would when I was older, and if I did or any of the other players on they did, then he was successful. Dad, you were successful. Your coaching was an extension of your career as a teacher. You helped shape the lives of many kids throughout the years. While not everyone turned out the way you may have hoped or wanted, they all respected you and as

they grew older, understood what you did and what you were trying to do, and that is all that matters.

One of my father's greatest strengths was his patience. Bhangwanji only knows how much Amit and I tested his patience over the years growing up. We pushed the limit and I know he was frustrated a few times, whose kidding who, quite a few times, but he never waivered and stayed patient. So mom, Amit and I would like to take some credit for helping dad develop his skill of being patient.

Our father was a man of simplicity, and I mean that in the most honourable way. He was never about the flash and have the best things in life, it was about living a good life and making sure everyone else was taken care of. If you needed anything, he would do his best to try and help out. If he did not have it, he would do his best to work with others to make sure you got what you needed. Sacrificing something of his own to ensure you had what you needed was never an issue for him. That earned him the respect of man which also another one of his great traits.

When I speak of his simplicity, I am referring to a few things. He would say, I am who I am and you either like me for it or you don't. I am not going to pretend to be someone else just so you like me. He would speak to you in a very straight forward manner and never really sugar coated anything.

You would often say when Bhagwanji says it is my time, it is my time. You never feared it, rather embraced it an lived life to the fullest. You taught us to enjoy life at all times as you never know when our time may come. While that may not have worked for others, it was something I grew up with and understood. They are words that I live by now, and truly respect.

For dad it was about others. If people tried to praise him, he would deflect it to others and if was criticism, he would take it upon himself to shelter others from it. I could say so much more about how great a person my father was but won't. Main reason being that he would not want that and I will respect his wishes.

Bhagwanji, I just want to warn you about one thing about dad. He can snore with the best of them!! As he will be with you soon, and I know Bhagwanji that you have a solution for everything, but good luck with that.

Dad, I would switch places with you in a heartbeat right now because you are the type of person this world needs more of. I can only hope to give back to my family and friends what you have given us. You have provided me with love, guidance, support, and the best father one could ever ask for. I thank you for it and I love you for it. I only wish that I had another opportunity to say that to you and that your grandchildren could have had you in their lives for so much longer, but I know they will cherish the time they spent with you and were lucky enough to have.

This is not goodbye dad as you will never leave us. I still will look to you to guide me through difficult times that lie ahead and help steer me down the right path as you always have. I know you will always be there for us.

Instead of goodbye, I will end with one of your favourite sayings that all of your family and friends have come to know from you:
Ram Ram Ji.

अपने आदरणीय एवं प्रिय दादाश्री के प्रति, सभी पौत्र-पौत्रियों – ब्रिएना आशा ठाकुर, ब्राइस ऋषि ठाकुर, जेकब ठाकुर, जेमी ठाकुर – की संयुक्त भावनाओं को अभिव्यक्त करती सबसे बड़ी पौत्री मेडिसन ऋचा ठाकुर द्वारा शब्दों में पिरोई पुष्पहार-रूपी भावभीनी अभिव्यक्ति-श्रद्धांजलि -

Grandparents are the type of people who are just always there. Whether it is a school assignment, holiday or just a quick visit to say hi, to grandchildren - they are a display of endless love and support,

Losing our grandpa has not been easy, but the impact he had on us as grandchildren, and on our father, will ensure his character and spirit lives on for a long time to come. Our grandpa was a strong-willed man. He had his routines and beliefs and that's just how it was. When we came over, you without a doubt could find him in the same chair in the family room. It was amazing to see how he lit up when we would arrive, jumping up ready to give us a big hug.

His love and compassion for others was evident not only for his family, but for everyone around him. Whether it was friends or a neighbour, a conversation was had. They may have been simple, but they were meaningful.

One of the most heartwarming parts of this entire process is witnessing how loved he was by his family, friends and community. We, as a family and especially my grandma, have been showered with love and support. The same love and support he showered each of us with during his time here.

While I can only wish we had more time with him, I'm so thankful for every moment we were able to spend with our grandpa. From hockey games, gardening in the backyard, watching him interact with my young cousins to the evident pride he showed in each of us… every moment is now a treasured memory. Grandpa – we miss and love you.

ईश्वर के चरणों में नतमस्तक ठाकुर साहब की आत्मा के प्रति आपकी सद्भावनाओं की एवं ठाकुर साहब के स्वप्न को सँजोए रखने में अपने प्रति आप सबकी अक्षुण्ण शुभेच्छाओं की शुभाकांक्षिणी,

सस्नेह,

स्नेह ठाकुर

"असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्यों मा अमृतंगमय."

स्वतंत्रता का उल्लास, विभाजन की त्रासदी

पद्मविभूषण लालकृष्ण आडवाणी

"भारत एक अविभाज्य भौगोलिक इकाई है. इसकी एकता उतनी ही प्राचीन है जितनी कि प्रकृति. इस भौगोलिक इकाई के भीतर सांस्कृतिक एकता इसकी सम्पूर्णता को समाहित किए हुए अनंत काल से विराजमान है. इस सांस्कृतिक एकता ने राजनैतिक एवं वंशीय भेदों को चुनौती दी है. पाकिस्तान पर किसी भी चर्चा में इस तथ्य की अनदेखी नहीं की जा सकती कि यदि प्रभावी बिंदु न भी कहें तो भी प्रस्थान बिंदु भारत की आधारभूत एकता ही रहता है."

– डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर, "पाकिस्तान ऑर द पार्टीशन ऑफ इंडिया"

"हम ये मिठाइयाँ नहीं खायेंगे." कराची के विद्यालय में उस अभागे दिन हिन्दू बच्चों ने कहा. जब बच्चे समूहबद्ध होकर मिठाइयों को अस्वीकार करें तो यह ज्ञात होता है कि कुछ अत्यधिक अनर्थ हुआ है. कहा भी जाता है कि बचपन तर्क की सुषुप्तावस्था और मासूमियत का उत्सव होता है. उन बच्चों के लिए मासूमियत की उम्र उस दिन अनायास समाप्त हो गई थी.

कटुता, भय, व्याकुलता, क्रोध और सबसे ऊपर अनिश्चितता की लकीरें उनके चेहरों पर अधिक थीं. पर इससे मैं आश्चर्यचकित नहीं हुआ, जब मैं मोटर-साइकिल से एक हिन्दू कॉलोनी से दूसरी में उस दिन भ्रमण कर रहा था. यही मर्मस्पर्शी भावनाएँ उनके शिक्षकों एवं माता-पिता के मन में भी इस प्रश्न के साथ समाहित होकर उभरीं कि "अब आगे क्या करें?" पड़ोसी पंजाब प्रान्त में भीषण रक्तपात के समाचार तथा परिणामस्वरूप हिन्दू एवं मुस्लिमों के प्रतिकूल सामूहिक पलायन चर्चा के विषय थे. आने वाले महीनों में कराची के ये सभी बच्चे अपने माता-पिता, शिक्षकों एवं मित्रों के साथ अपने विद्यालय, घर एवं खेल के मैदानों को हमेशा के लिए छोड़ देंगे. भयभीत हिन्दू परिवार समूहबद्ध होकर इस नई खींची सीमा रेखा के उस पार नये शहरों की ओर भाग रहे थे. राह में हजारों मारे गए तथा असंख्य अपनों तथा प्रियजनों से बिछुड़ गए. कुछ ही समय में कराची एवं सिंध प्रान्त के अन्य भागों में पूरी हिन्दू जनसँख्या का सफाया हो जाना था.

सर्वमान्य सिंधी अध्यात्मिक नेता साधु टी. एल. वासवणी ने कालांतर में भाव-विह्वल होकर स्मरण किया कि "ऐसे चक्रवाती विनाश में कोई नहीं जानता था कि थके हुये शरीर को आराम और सादा भोजन हेतु कहाँ पर जगह मिलेगी. कोई नहीं जानता था कि वह अपने दोस्तों और प्रिय जनों से फिर कभी मिल पायेगा अथवा नहीं. मानवता को दरकिनार कर विस्थापन के इस भयानक घटनाचक्र में मेरी दो बहनें और मैं निर्दयतापूर्वक माता-पिता से अलग हो गए, जो सिंध में ही रह गए, जबकि हम सुरक्षा की तलाश में हिंदुस्तान आने पर मजबूर हुए. हमारे युवा जीवन पर यह सबसे भयानक आपदा आ पड़ी, जिससे हमारे मन-मस्तिष्क सुन्न रह गए."

उस काले दिन जो लोग सिंध से पलायन कर गए, वे सभी भारतीय थे तथा उन शरणार्थी बस्तियों में भी गर्वित भारतीय बने रहे जो बम्बई (अब मुम्बई), कल्याण, दिल्ली, इंदौर, जयपुर, कलकत्ता (अब कोलकाता) एवं कांडला की शरणार्थी कॉलोंनियों में उनका नया आशियाना बन गए. किन्तु उनकी स्वयं की गृहभूमि एक ही रात्रि में विदेशी राष्ट्र, तथा उनका प्रियतम कराची उस परराष्ट्र की राजधानी, बन गई.

यह था १४ अगस्त, १९४७ का दिन.

यह वह दिन था जब संयुक्त भारत को विभाजित कर पाकिस्तान नामक पृथक् मुस्लिम राष्ट्र बनाया गया था. कुछ वर्षों से मैं एक अमंगल वाक्य सुन रहा था – "द्विराष्ट्र सिद्धांत". मेरी युवा बुद्धि ने उसे सहजता से अस्वीकार कर दिया. 'हिन्दू एवं मुस्लिम दो विभिन्न राष्ट्रों के कैसे हो सकते हैं? क्या सिर्फ़ इसलिए कि वे दो विभिन्न आस्थाओं के हैं?' मेरे लिए इसका कोई अर्थ नहीं था, ख़ास तौर पर जब मैंने सिंध की सामाजिक रचना एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को देखा, जिसमें हिन्दू को मुस्लिम से तथा मुस्लिम को हिन्दू से अलग नहीं किया जा सकता था. इसी तरह से सिंध को भी भारत से अलग नहीं किया जा सकता. 'नहीं, पाकिस्तान नहीं बन सकता.' यह मेरा विश्वास था – सिंध में रह रहे अधिकतर हिन्दुओं की तरह. 'हम हज़ारों वर्षों से भारत का अभिन्न अंग रहे हैं तथा हमेशा ऐसे ही बने रहेंगे. भारत को कभी भी मज़हब के आधार पर विभाजित नहीं किया जा सकता.'

फिर भी यह हुआ.

विभाजन, जो कि कुछ वर्षों पूर्व तक एक कल्पना लगा था, अब एक यथार्थ बन चुका था. मुझे याद है, कराची के ज़्यादातर हिस्से में कोई उत्साह नहीं था, हालाँकि कुछ इलाकों में आतिशबाजी हुई तथा रात भर उल्लास-आनंद का माहौल था. अगले दिन भारत स्वतंत्र हुआ. फिर भी शहर के हमारे भाग में कोई उत्साह नहीं था. इसके विपरीत, निराशा की कालिमा छाई हुई थी. भारत एवं पाकिस्तान दोनों में ही ब्रिटिश झंडा यूनियन जैक हमेशा के लिए उतार दिया गया. परन्तु उसके स्थान पर दो पृथक् झंडे फहराए गए – भारत में तिरंगा तथा कराची में चाँद एवं सितारेवाला हरा झंडा. मुझे याद है, उसके बाद के दिनों में मैं सोचता था, 'कितना अभिशप्त भाग्य है मेरा! मैंने १५ अगस्त को भारत की स्वतंत्रता का उत्सव भी नहीं मनाया.' हालाँकि गत पाँच वर्षों से, जब से मैं राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का स्वयंसेवक बना था, मैं दिन-रात केवल इस शुभ दिन का ही स्वप्न देखता था. वह दु:खदायी एवं कड़वा विचार आने वाले कई वर्षों तक मुझे सालता रहा.

सिंध का काँग्रेस से मोहभंग क्यों हुआ

संयुक्त भारत के लिए स्वतंत्रता प्राप्त करना संघ का लक्ष्य था, जो सन् १९४२ में स्वयंसेवक बनने के बाद मेरा भी व्यक्तिगत लक्ष्य बन गया. जब मैं संघ की राष्ट्रवाद की विचारधारा से आकर्षित एवं आदर्शवाद के मूलमंत्र से प्रेरित हुआ.

मेरे जीवन को रूपांतरित करने वाली घटना सिंध के दूसरे सबसे बड़े शहर हैदराबाद में घटित हुई. दो वर्षों की कॉलेज की शिक्षा पाने के बाद मैं कराची लौट आया तथा संघ का प्रचारक बन गया – सिंध के दस जिलों में कार्यरत पचहत्तर पूर्णकालिक प्रचारकों में से एक. वस्तुत: हमारे प्रान्त में पूरे भारत में किसी भी जिले की तुलना में सर्वाधिक प्रचारक थे. संघ ने अपनी गतिविधियाँ सिंध में १९३९ में ही आरम्भ की थीं; तथापि, थोड़े ही समय में वह प्रान्त के समस्त शहरी केन्द्रों में सर्वाधिक लोकप्रिय एवं शक्तिशाली संगठन बन गया था. उन दिनों सिन्ध के लगभग प्रत्येक शहर में, कराची तथा हैदराबाद सहित, हिन्दू जनसँख्या में अधिक थे. वे अधिक समृद्ध एवं शिक्षित थे तथा विधि, चिकित्सा एवं शासकीय सेवा जैसे व्यवसायों में ज्यादा सक्रिय थे.

संघ में मेरा दायित्व शीघ्र ही बढ़ा दिया गया तथा जनवरी १९४७ में मुझे नगर कार्यवाह बना दिया गया. मेरे दायित्वों में शाखाओं की देख-रेख करना था, जिसने हजारों युवकों को आकर्षित कर लिया था तथा प्रभावशाली हिन्दुओं से सम्पर्क बनाना था. हालाँकि मेरा परिवार कराची में रहता था, मैं अपने सहयोगी कार्यकर्ताओं के सान्निध्य में संघ मुख्यालय में चला गया था. मेरे पास एक मोटर-साइकिल थी, जिससे मैं संगठनात्मक कार्यों हेतु शहर भर में घूमता था. यह संघ द्वारा अपने प्रचारकों को प्रदत्त दस वाहनों में से एक थी.

अधिकांश व्यक्तियों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि उस समय सिंध में संघ तथा काँग्रेस के बीच कोई वैर-विरोध नहीं था. हिन्दुओं का यह विश्वास था कि दोनों संगठन ब्रिटिश शासन से भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रतिबद्ध थे. हालाँकि मेरे जैसे युवा स्वयंसेवक को हमारे ज्येष्ठों द्वारा यह बताया गया था कि काँग्रेस की

शांतिपूर्ण संघर्ष की पद्धति न तो शक्तिशाली ब्रिटिशों को भारत छोड़ने पर मजबूर कर पाएगी और ना ही इसकी एकता-अखंडता को सुनिश्चित करेगी. मुझे उन पर विश्वास था. फिर भी, रणनीति के सन्दर्भ में मतभेदों के कारण काँग्रेस को विरोधी नहीं माना, शत्रु तो कभी समझा ही नहीं. सिंध की सम्पूर्ण हिन्दू जनसँख्या काँग्रेस की प्रबल समर्थक थी. साथ ही मैं ऐसे काँग्रेस परिवारों को जानता था, जिन्होंने अपने युवा पुत्रों को संघ का स्वयंसेवक बनने के लिए प्रेरित किया. सर्वोत्तम उदाहरण स्व. के. आर. मलकाणी (केवल रतनमल मलकाणी (१९२१-२००३) कराची में संघ के मेरे सहयोगी स्वयंसेवक थे विभाजन के पश्चात् वह दिल्ली चले आए. उन्होंने अनेक वर्षों तक 'ऑर्गेनाइजर' के सम्माननीय सम्पादक के रूप में कार्य किया, जहाँ पर मैं उनका उप-सम्पादक था. अनेक पुस्तकों के लेखक मलकाणी जी भाजपा के उपाध्यक्ष भी थे तथा राजग सरकार के कार्यकाल में पांडिचेरी (अब पुदुच्चेरी) के लेफ्टिनेंट गवर्नर थे.) – का ले सकते हैं, जो कि छ: दशकों से अधिक समय तक मेरे प्रगाढ़ मित्र तथा सहयोगी रहे. उनके बड़े भाई प्रो. एन. आर. मलकाणी सम्मानित काँग्रेस नेता थे, जिन्होंने उन्हें सलाह दी, 'संघ में शामिल हो जाओ. यह एक अच्छा संगठन है, जो युवाओं को देशभक्ति तथा अनुशासन सिखाता है.'

मेरे संघ का स्वयंसेवक बनने के कुछ ही माह के भीतर महात्मा गाँधी ने 'भारत छोड़ो' का राष्ट्रव्यापी आह्वान किया तथा मुझे याद है कि कितने उत्साह से सिंध में हिन्दुओं एवं राष्ट्रवादी मुस्लिमों ने उसका स्वागत किया था. हेमू कलाणी उन्नीस वर्ष का एक देशभक्त बालक, जिसे अँग्रेजों ने १९४३ में फाँसी पर लटका दिया था, की शहादत से वे क्रोधित तथा प्रेरित हुए थे. सिंध में हजारों अन्य युवाओं की तरह वो गाँधी जी के 'करो या मरो' के आह्वान पर स्वतंत्रता आन्दोलन में कूद पड़ा था. फाँसी के फंदे पर जाते हुए उसने अपनी माँ को सुबकते हुए देखा. उसने अपनी माँ से कहा, 'माँ, क्या तुमने मुझे भगवद्गीता से यह नहीं सिखाया कि आत्मा अमर है? मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि अगर मैंने दोबारा जन्म लिया तो अगला जीवन भी मैं भारतमाता की स्वतंत्रता हेतु न्योछावर कर दूँगा.'

मेरे मामाजी श्री रामचंद एक समर्पित काँग्रेसी थे और १९४२ के आन्दोलन में जेल गए थे. उनके पुत्र मोती ने, जिनका निधन २००७ में हो गया, तारा से विवाह किया था, जो एक उत्कृष्ट सिंधी लेखिका थीं. तारा ने हाल ही में रामचंद की श्रृंखलाबद्ध जीवनी लिखी, जिसमें भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में उनके योगदान का सविस्तार वर्णन किया गया है.

सिंध के हिन्दुओं तथा काँग्रेस के बीच सम्बन्धों में तनाव तब आया जब आसमान में विभाजन के काले बादल मँडराने लगे. पूर्व में काँग्रेस नेताओं ने यह प्रतिज्ञा की थी कि वे किसी भी स्थिति में भारत का विभाजन नहीं होने देंगे. जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया, उन्होंने यह आश्वासन दिया कि सिंध पाकिस्तान का भाग नहीं बनेगा. तत्पश्चात् भी उन्होंने यह आश्वासन दिया कि हिन्दू विभाजन के पश्चात् भी सुरक्षित रहेंगे. इस आशा को महात्मा गाँधी के इस आह्वान से बल मिला कि पश्चिमी पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान एवं उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रान्त के हिन्दू एवं सिक्ख भारत आने के लिए अपना घर न छोड़ें और इसी तरह से पूर्वी पंजाब, उत्तर प्रदेश एवं बिहार के मुस्लिम पाकिस्तान की ओर पलायन न करें. आह, विभाजन से उत्पन्न हुई घृणा एवं हिंसा की दूषित आँधी को महात्मा गाँधी के आश्वासन भी नियंत्रित नहीं कर सके.

जैसे-जैसे अँग्रेजों के भारत छोड़ने की तारीख नज़दीक आ रही थी, वैसे-वैसे हताश-निराश हिन्दू यह महसूस करने लगे कि काँग्रेस ने उन्हें धोखा दिया है. उनकी आशाएँ केवल एक संगठन पर केन्द्रित थीं – संघ पर. संघ की संगठनात्मक शक्ति ने हिन्दुओं को पुन: आश्वस्त किया कि पाकिस्तान के निर्माण के बावजूद वे अपने प्रान्त में सुरक्षित रह पाएँगे.

दुर्भाग्य से सन् १९४७ में संघ राष्ट्रीय स्तर पर इतना शकिशाली नहीं था कि विभाजन की त्रासदी को रोक सके.

कराची में एक सप्ताह में तीन नेताओं का आगमन

अगस्त १९४७ का प्रथम सप्ताह कराची में तीन महत्वपूर्ण नेताओं के आगमन का साक्षी बना. पहले आचार्य जे.बी. कृपलाणी (१८८८-१९८२) थे, जो उस समय अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे. वह सिंध के जाने-माने स्वतंत्रता-सेनानी थे तथा गाँधी जी के विश्वस्त अनुयायियों में से एक थे. पूर्व में, सिंध में आने वाले प्रत्येक काँग्रेसी नेता का भव्य स्वागत होता था. अत: एक काँग्रेस अध्यक्ष, वह भी सिंधी, जो कि अपने गृह-प्रान्त में आए थे और उसी माह में जब भारत स्वतंत्रता प्राप्त करने वाला था, का शानदार स्वागत होना चाहिए था. परन्तु ऐसा नहीं हुआ. आचार्य कृपलाणी हवाई अड्डे पर अपने स्वागत हेतु आए थोड़े-से व्यक्तियों को देखकर हतप्रभ रह गए. क्रोधित एवं छले गए क्रुद्ध हिन्दुओं का कराची में काँग्रेस से मोहभंग हो गया था. कृपलाणी ने आमिल इंस्टीट्यूट के टेनिस कोर्ट में आयोजित सभा में मात्र चार-पाँच सौ व्यक्तियों को सम्बोधित किया.

अगले दिन, शायद २ अथवा ३ अगस्त को, मुझे ठीक से याद नहीं - सरसंघचालक श्री माधव सदाशिव गोलवलकर (श्री माधव सदाशिव गोलवलकर (१९०६-१९७३) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार (१८८७-१९४०) की मृत्यु के पश्चात् द्वितीय सरसंघचालक बने. डॉ. हेडगेवार ने हिन्दुओं के एक राष्ट्रीय संगठन के रूप में संघ की स्थापना की, जो कि भारत की स्वतंत्रता, तत्पश्चात् हिन्दू पुनर्जागरण हेतु प्रतिबद्ध था. श्रीगुरुजी मूलत: एक तपस्वी थे, जो रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानंद के जीवन-दर्शन से प्रभावित थे. उन्होंने संघ के माध्यम से राष्ट्र की सेवा कर अध्यात्मिक उत्कर्ष प्राप्त करने का पथ चुना. सौभाग्य से मुझे विभाजन के पूर्व व बाद में भी उनका निकट सान्निध्य प्राप्त हुआ.) – जिन्हें श्रद्धापूर्वक 'श्रीगुरुजी' कहा जाता था, सिंध आए. १९४३ तक प्रतिवर्ष उनकी सिंध यात्रा ने हिन्दुओं की एकता को बल देने में काफी योगदान दिया. प्रत्येक वर्ष वह प्रान्त में व्यापक भ्रमण करते थे तथा कराची, हैदराबाद, सक्खर, शिकारपुर एवं मीरपुर खास आदि स्थानों पर जाते थे. इन यात्राओं में वह धार्मिक नेताओं, जैसे साधु टी.एल, वासवाणी एवं स्वामी रंगनाथानंद, डॉ. चोइथराम गिदवाणी, प्रो. एन.आर. मलकाणी एवं अन्य काँग्रेस नेताओं से; प्रमुख व्यवसायियों शिवरतन मोहत्ता, लालजी मेहरोत्रा, भाई प्रताप तथा अन्यों से; सिंध सरकार में मंत्री सर्वश्री निश्चलदास वजीरानी, डॉ. हेमनदास वाधवाणी एवं मुखी गोविन्दराम से; साथ ही अनेक विद्वानों, विधिवेत्ताओं एवं अन्य उद्यमियों से मिलते थे. विभिन्न क्षेत्रों के प्रमुख व्यक्तियों से भेंट इस तथ्य का प्रमाण थी कि संघ सिंध में हिन्दू समुदाय के मन-मस्तिष्क पर अपनी छाप छोड़ने में सफल रहा.

संघ के कारण ही एमिल एवं भाईबंद हिन्दू समुदाय, हैदराबादी एवं गैर-हैदराबादी, शहरी एवं ग्रामीण, सनातनी तथा वे जो आर्यसमाज अथवा ब्राह्मसमाज के अनुयायी थे, के बीच आई दूरी एवं खाई को पाटने में सफल रहा. विशेष रूप से काँग्रेस एवं हिन्दू महासभा परिवारों के लड़कों को संघ की शाखाओं में एक साथ खेलते तथा भगवा ध्वज को 'ध्वज प्रणाम' करते देखा जा सकता था.

परन्तु श्रीगुरुजी की वर्ष १९४७ कि यात्रा पिछले वर्षों की अपेक्षा बहुत ही असामान्य सन्दर्भ और समय में हो रही थी. देश का विभाजन एवं सिंध का भारत से अलग होना अवश्यम्भावी था. सिंध के हिन्दू स्वयं को तूफानी समुद्र में एक नौका में फँसा हुआ महसूस कर रहे थे, जिसके बचने का कोई रास्ता नहीं था. मैं श्रीगुरुजी को लेने रेलवे स्टेशन गया था. मैंने उन्हें बताया कि आचार्य कृपलाणी भी कल ही कराची पधारे हैं. उन्होंने एक पल के लिए मुझे देखा, उनके ऋषिमुख पर क्रोध की एक हलकी झलक थी. तीखे स्वर में उन्होंने कहा, 'सिंध गँवाकर अब सिंध आए हैं?'

विभाजन से मात्र दस दिन पहले ५ अगस्त को श्रीगुरुजी ने कराची के इतिहास में हिन्दुओं की अंतिम और सर्वाधिक विशाल जनसभा को सम्बोधित किया. सभा से पूर्व शहर की गलियों से होकर जाते स्वयंसेवकों के पथ-सञ्चलन की जिम्मेदारी मुझ पर थी. यह सिंध में संघ के इतिहास का सबसे बड़ा पथ-संचलन साबित हुआ. अद्‌भुत दृश्य था : दस हजार स्वयंसेवक एक ताल और एक वेशभूषा – खाकी निकर, सफ़ेद कमीज़ और काली टोपी - में अर्ध-सैन्य बैंड की धुन पर राष्ट्रभक्ति के गीत गाते हुए, पाकिस्तान की नई बनने वाली सरकार को एक चुनौती देते हुए और हिन्दुओं में एक विश्वास उत्पन्न करते हुए. अंतत: जब स्वयंसेवक सभास्थल पर पहुँचे तो वहाँ एक लाख लोगों का विशाल जनसमूह उनके स्वागत के लिए उपस्थित था. सभा के अध्यक्ष साधु टी.एल. वासवाणी ने कहा, 'घोर दू:ख एवं परीक्षा की घड़ी में सिंधी हिन्दू समुदाय के साथ खड़े होकर संघ ने जो पुनीत कार्य किया है, उसके लिए वह सदा संघ के प्रति कृतज्ञ रहेगा और इतिहास इसका साक्षी रहेगा.'

अपने उद्बोधन में श्रीगुरुजी ने कहा, 'हमारी मातृभूमि पर एक विपदा आ गई है. भारत का विभाजन एक पाप है तथा जो उसके लिए उत्तरदायी हैं, उन्हें भावी पीढियाँ कभी क्षमा नहीं करेंगी. यह अप्राकृतिक है तथा इसे निरस्त करना होगा. जो कुछ हुआ है, वह अँग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति का विषफल है. मुस्लिम लीग ने ज़ोर-जबरदस्ती तथा हिंसा से पाकिस्तान को प्राप्त किया है, जिसके आगे काँग्रेस नेतृत्व ने घुटने टेक दिए. मुस्लिम इस विचार द्वारा भ्रमित हुए हैं कि वे एक पृथक् राष्ट्र हैं, क्योंकि वे इस्लाम धर्म के अनुयायी हैं. उन्हें यह ज्ञात होना चाहिए कि वे उसी प्रजाति के हिन्दू हैं, जिस प्रजाति के हिन्दू उनके पूर्वज थे. उनकी सभ्यता एवं संस्कृति भारतीय है, न कि अरबी. दुर्भाग्य से, उन्हें यह मानने के लिए मजबूर किया गया कि इस्लाम के प्रादुर्भाव से पूर्व जो कुछ था, वह उनका नहीं है. यह अकल्पनीय है कि सिंध, जिससे होकर पवित्र सिन्धु नदी बहती है, भारत से अलग हो गई है. तथापि प्रत्येक दु:खद अनुभव मानवीय चेतना की कसौटी है. हिन्दुओं को अपनी रक्षा स्वयं करनी होगी. परन्तु आत्म-रक्षा के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है, और शक्ति एकता से आती है. हमारे स्वयंसेवक सिंध में हिन्दुओं की सुरक्षा हेतु हर सम्भव कदम उठाएँगे. वे अपने सुख और सुरक्षा के बारे में न सोचते हुए अपना सर्वस्व बलिदान करने में अग्रणी होंगे. हम परम शक्तिशाली परमात्मा से प्रार्थना करें कि वे हमें इस दुर्भाग्य से उबरने की शक्ति प्रदान करें.'

भयंकर अनिश्चितता, भय एवं तनाव की परिस्थितियों में श्रीगुरुजी के इन शब्दों ने सिंध में बसे हिन्दुओं के मन में आवश्यक आत्म-विश्वास जाग्रत कर दिया.

कराची आने वाले तीसरे नेताओं में मुस्लिम लीग के प्रमुख तथा पाकिस्तान के मुख्य सृजनकर्ता मोहम्मद अली जिन्ना थे. वह अपने समर्थकों के जोरदार स्वागत के बीच ७ अगस्त को दिल्ली से कराची पहुँचे. हालाँकि हिन्दू क्षेत्रों में क्रुद्ध नीरवता ने उनका स्वागत किया, लेकिन बाकी शहर 'पाकिस्तान जिंदाबाद' से गूँज उठा. सभी गलियाँ हरे झंडे तथा बंदनवारों से सजी थीं. समाचार-पत्र जिन्ना के चित्रों से भरे थे – लम्बा कोट तथा नाव के आकार की झब्बेदार लाल तुर्की टोपी पहने एक पतला-लम्बा व्यक्ति. ये चित्र विचित्र थे, क्योंकि अभी हाल तक जब वह दिल्ली में काँग्रेस नेताओं तथा ब्रिटिश अधिकारियों से विभाजन सम्बन्धी वार्त्तालाप में संलग्न थे, तब मैंने उनके जो चित्र देखे थे उसमें वे पूरी तरह से अँग्रेजी वेशभूषा पहने थे.

मुझे यह कहना होगा कि जिन्ना मेरे लिए तथा सिंध के अधिकतर हिन्दुओं के लिए एक पहेली थे. सन् १९४३-४४ तक मैंने उनके विषय में नहीं सुना था. संघ में मुझे अपने वरिष्ठ कार्यकर्ताओं से यह ज्ञात हुआ कि हालाँकि अपने राजनीतिक काल के आरम्भिक चरण में वह एक कट्टर राष्ट्रवादी भारतीय थे; लेकिन कालांतर में दक्षतापूर्वक भारतीय मुस्लिमों के एक वर्ग की अलगाववादी भावनाओं को संपुष्ट कर द्विराष्ट्र के सिद्धांत के आधार पर भारत का विभाजन करवा दिया. उनका जन्म कराची में २५ दिसम्बर, १८७६ को हुआ था; परन्तु वह सिंधी नहीं थे. उनकी माता मीठीबाई तथा पिता जिन्नाभाई पूँजा काठियावाड़, गुजरात के खोजा मुस्लिम

थे, वही क्षेत्र जहाँ महात्मा गाँधी का जन्म हुआ था. वह जिन्ना के जन्म के कुछ वर्षों पूर्व ही बेहतर व्यवसाय की ख़ोज में कराची चले गए थे. कराची के साथ जिन्ना का सम्बन्ध नाममात्र का था क्योंकि उन्होंने अपना समस्त शैक्षणिक, व्यावसायिक एवं राजनीतिक जीवन बम्बई तथा लन्दन में व्यतीत किया था. वह सिंध में न तो लोकप्रिय हस्ती थे और न ही ज़्यादा परिचित. सिंध में अधिकांश व्यक्तियों को उनके विषय में तब पता चला, जब मुस्लिम लीग ने उनके नेतृत्व में वर्ष १९४० में लाहौर में पाकिस्तान प्रस्ताव (२२-२४ मार्च, १९४० को लाहौर में पाकिस्तान प्रस्ताव पारित होने की स्मृति में उस स्थल पर, जहाँ प्रस्ताव पारित हुआ था, मीनारयुक्त इमारत मीनार-ए-पाकिस्तान बनाई गई है.) – पारित किया, जिसमें भारतीय मुस्लिमों के लिए एक पृथक राष्ट्र की माँग की गई थी.

अत: १९४७ में कराची आये जिन्ना एक नायक थे, जिसने इस प्रस्ताव को लगभग एकाकी प्रयासों से यथार्थ रूप दे दिया था. अब 'कायदे आज़म' के रूप में जाने जानेवाले जिन्ना एक सप्ताह में पाकिस्तान के पहले गवर्नर जनरल बनने वाले थे.

विभाजन - सिंध के हिन्दुओं के लिए एक दोहरी त्रासदी

पाकिस्तान के निर्माण तक सिंध प्राय: शांतिपूर्ण था. हालाँकि वर्ष १९४७ के उत्तरार्ध में निकटवर्ती पंजाब में भयानक साम्प्रदायिक दंगे शुरू को गये थे. इसीप्रकार की हिंसा उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान तथा पूर्व के अन्य भागों में भी हुई. बीभत्स नर-संहार के समाचार – हिन्दुओं के पंजाब से पूर्व के लिए सामूहिक पलायन तथा भारतीय सीमा पर आ रही लाशों से भरी रेलगाडियों ने सिंध में भी व्यापक भय एवं आतंक का माहौल बना दिया था. समृद्ध परिवारों ने विभाजन की नियत तिथि से कुछ माह पूर्व ही सिंध छोड़ना आरम्भ कर दिया था. जुलाई एवं अगस्त सिंध में अत्यधिक तनावपूर्ण माह थे. सितम्बर में इस धीमे प्रवास में एकाएक गति आई. इस समय तक उत्तर प्रदेश, बिहार तथा भारत के अन्य भागों से कराची आने वाले मुस्लिम मुहाजिरों की संख्या भी काफी बढ़ गई थी.

संघ के हम सभी कार्यकर्ता सिन्ध के लोगों को अपनी गृहभूमि न छोड़ने के लिए समझा-बुझा रहे थे. हमारे प्रयासों के कुछ परिणाम सामने आए, फिर भी नव-निर्मित पाकिस्तान के अन्य भागों में नर-संहार की घटनाएँ हिन्दुओं को स्पष्ट संकेत दे रही थीं – 'बिना किसी विलम्ब के सिंध छोड़ो.' सितम्बर के आरम्भ में एक दिन मैं मोटरसाइकिल से कराची के मुख्य रेलवे-स्टेशन के पास की सड़क पर जा रहा था. मैंने एक व्यक्ति का शव देखा, जिसकी छुरा भोंककर हत्या की गई थी. कुछ दूरी पर मैंने एक और शव देखा, फिर एक तीसरा....यह दृश्य मेरे लिए अस्वाभाविक एवं परेशान करने वाला था, क्योंकि मैंने जीवन में पहली बार सड़कों पर लाशें पड़ी देखी थीं.

बाद में मुझे मालूम हुआ कि दिसम्बर १९४७ के बाद जब मैंने भी कराची छोड़ दिया तब हैदराबाद में हिन्दुओं को भयंकर साम्प्रदायिक हिंसा का निशाना बनाया गया. इसने कराची में भी खलबली मचा दी. हिन्दुओं के व्यापारिक प्रतिष्ठान रात्रि में चिह्नित किए जाते थे और सुबह अधिकारियों की मिली-भगत से उन्हें लूट कर उन पर जबरदस्ती कब्ज़ा कर लिया जाता था. सिंध के इतिहास में ६ जनवरी, १९४८ सर्वाधिक काले दिवस के रूप में लिखा जाएगा, क्योंकि इस दिन कराची में हिन्दुओं की सफाई के लिए सर्वाधिक क्रूरतम हिंसा दृष्टिगत हुई. सबसे भयावह घटना आर्यपथ सिंधी सभा में घटित हुई, जहाँ एक मंदिर और एक स्कूल था. बाहर से कराची आने वाले सिंधी वहाँ पर रात भर ठहरते थे, ताकि अगले दिन बम्बई जाने वाले जहाज पर चढ़ सकें. एक रात वहाँ आक्रमण करके लगभग ३०० हिन्दू एवं सिक्खों को मार डाला. इन दंगों में सिंध में मारे जाने वाले हिन्दुओं की संख्या नहीं है, परन्तु आम तौर पर माना जाता है कि यह संख्या हज़ारों में थी.

तत्पश्चात् ही हिन्दुओं को पूर्णत: विश्वास हो गया कि सिंध में ठहरना अब उनके लिए खतरे से खाली नहीं है. मुश्किल से तीन महीनों में सिंध के हिन्दुओं की ९० प्रतिशत जनसँख्या – यानी लगभग १२.५ लाख लोगों - ने हमेशा के लिए अपनी प्रिय पैतृक भूमि को छोड़ दिया. अचानक इतिहास के क्रूर हाथों ने सिंध में उनके सुरक्षित आश्रय को छीन लिया था, जो हजारों वर्षों से उनका घर था; जो भारतीय संस्कृति का पालना था; जहाँ हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई की तरह रहते थे और एक विलक्षण सांस्कृतिक सभ्यता को विकसित किया; जहाँ निरंकुश मुस्लिम आक्रान्ताओं का हिन्दू व मुस्लिम संतों तथा दोनों धर्मों के अनुयायियों द्वारा संयुक्त रूप से प्रतिरोध किया गया. अचानक हमारे पूर्वजों की गृहभूमि हमारे लिए एक विदेशी राष्ट्र का हिस्सा बन गई.

अधिकांश प्रवासी बम्बई के आस-पास की सीमाओं पर आ कर बस गए. वे अपने साथ नीड़ का निर्माण करने तथा भारत के राष्ट्र-निर्माण में योगदान करने के दृढ-निश्चय के अतिरिक्त और कुछ साथ नहीं लाए थे. वह विभाजन सिंध के हिन्दुओं के लिए दोहरी त्रासदी थी, जिसे मेरी पत्नी की भाभी लता जगत्याणी ने परिश्रमपूर्वक अपनी पुस्तक 'सिंधी रिफ्लेक्शन' में लेखनीबद्ध किया है. यह हिन्दू शरणार्थियों के जीवन की मर्मस्पर्शी व प्रेरक कहानी है, जिन्होंने समर्पित भाव से, तन-मन-धन से भारत की सेवा की है.

१२ सितम्बर को जब मैंने दिल्ली जाने के लिए कराची छोड़ा तो मैं बीस वर्ष का भी नहीं हुआ था. और उस छोटी-सी उम्र तक ही सिंध का मेरा जीवन-काल सीमित रहा.

सिंध और भारत : एक अटूट बंधन

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती
नर्मदा सिन्धु कावेरी जलऽस्मन् सन्निधिं कुरु
पुष्करादयाणि तीर्थाणि गङ्गाद्याः सरिता स्तथा
आगच्छन्तु पवित्राणि स्नानकाले सदा मम.
(अपनी उपस्थिति से आशीर्वाद दो, हे पवित्र नदी गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती,
सिन्धु और कावेरी! पुष्कर तथा अन्य सभी पवित्र नदियों का जल हमेशा
मेरे स्नान के लिए मुझे प्राप्त हो.)

राष्ट्रीय एकता के विचार का आह्वान करती एक प्रात:कालीन प्रार्थना.

यह तुम तो नहीं

अनुप्रिया

तुम्हारे आसपास
उगाये गए हैं
संस्कारों के जंगल
निर्मित किये गए हैं
तुम्हारे चारों ओर
सभ्यता के
ऊँचे-ऊँचे किले
तुम्हारे कमरे की
खिड़कियाँ
की गयी हैं बंद
किसी साजिश के तहत
नोचे गए हैं
तुम्हारे कोमल सपनों के
सकुचाये पंख
कि
नहीं देख सको तुम
आसमान की ऊँचाइयाँ
कुतर दी गयी है
तुम्हारी रात

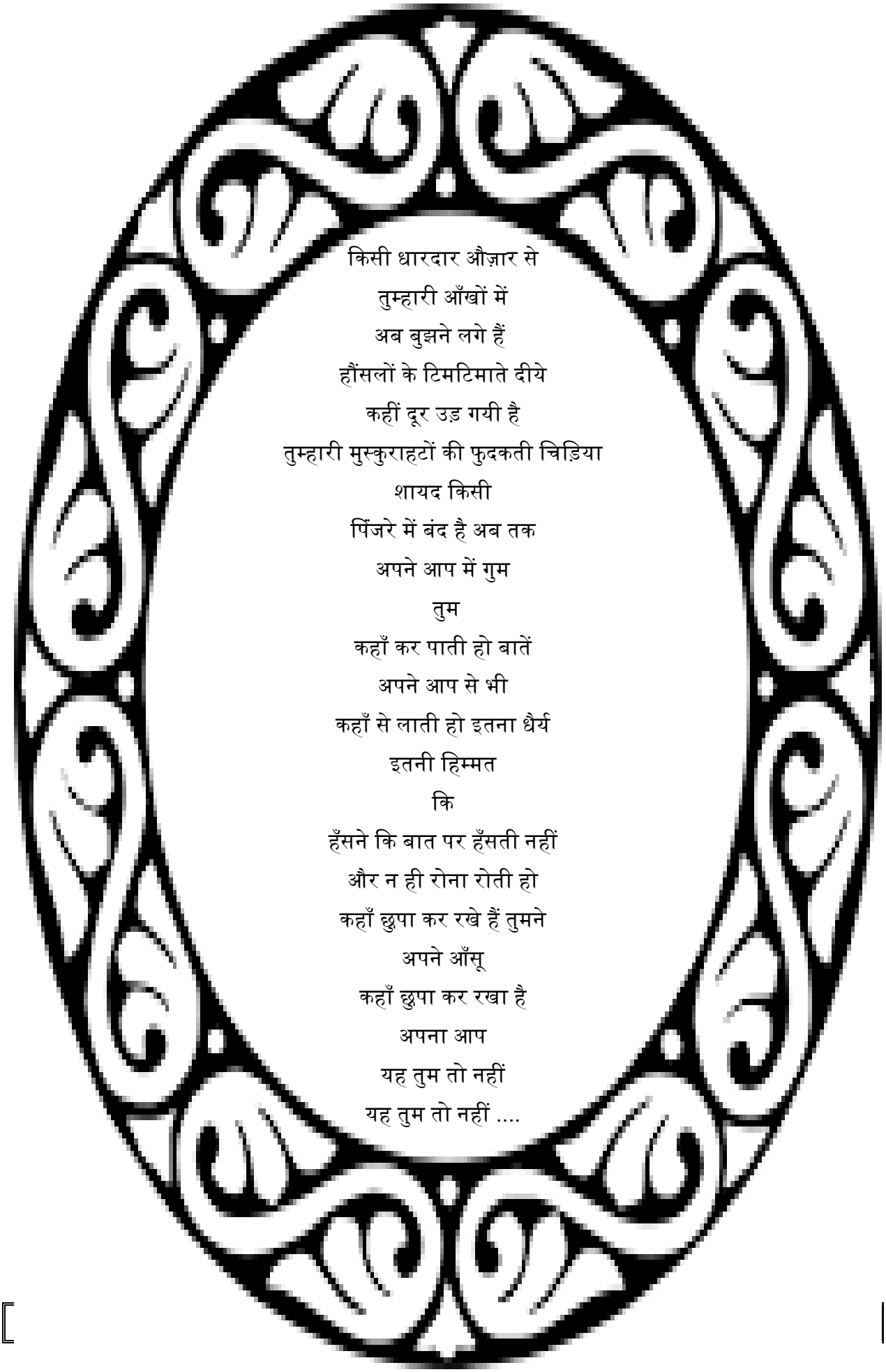

किसी धारदार औज़ार से
तुम्हारी आँखों में
अब बुझने लगे हैं
हौंसलों के टिमटिमाते दीये
कहीं दूर उड़ गयी है
तुम्हारी मुस्कुराहटों की फुदकती चिड़िया
शायद किसी
पिंजरे में बंद है अब तक
अपने आप में गुम
तुम
कहाँ कर पाती हो बातें
अपने आप से भी
कहाँ से लाती हो इतना धैर्य
इतनी हिम्मत
कि
हँसने कि बात पर हँसती नहीं
और न ही रोना रोती हो
कहाँ छुपा कर रखे हैं तुमने
अपने आँसू
कहाँ छुपा कर रखा है
अपना आप
यह तुम तो नहीं
यह तुम तो नहीं ....

हिन्दी व साहित्य सम्बन्धी अवधारणा

पं. केशरीनाथ त्रिपाठी
(गवर्नर पश्चिम बंगाल)

लोकहित और जनहित के लिए रचित लेखन ही साहित्य है. साहित्य का उद्देश्य है शिवेतर की क्षति. जो जनमंगलकारी नहीं है, उसका विरोध करना, उसको नष्ट करना तथा ऐसा कुछ सृजन करना जिससे इस सदुद्देश्य की पूर्ति हो, या होने की सम्भावना हो. इसी दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है – "कीरति भनिति भूति सब सोई। सुरसरिसम सब कर हित होई।" साहित्य भी इसी उद्देश्य को लेकर चलता है. वह वर्ग, वर्ण, जाति, समुदाय, सम्प्रदाय, धर्म, संस्कार, दर्शन में कोई भेद-भाव नहीं करता. सबका हित चाहने वाला, सबका मंगल करने वाला, सबका मनोरंजन करने वाला लेखन ही साहित्य की कोटि में आता है. साहित्य में ही उस देश का इतिहास समय रहता है, उसका दर्शन समाहित रहता है, उसके रीति-रिवाज़, परम्पराएँ और मान्यताएँ सुरक्षित, संरक्षित रहती हैं. सभ्यता और संस्कृति से वह रचा-बसा रहता है. यदि किसी देश के बारे में यह सब कुछ जानने की जिज्ञासा हो, तो उसका समाधान वहाँ के साहित्य से ही मिल सकता है. किसी काल का साहित्य अतीत और आगत समय का सेतु होता है. उसमें अतीत का अनुभव और भविष्य की दृष्टि समाहित होती है. वस्तुत: साहित्य, संगीत और कला ही मानव को पशुत्व से बचाते और मनुष्यत्व की ओर ले जाते हैं. मानव की महत्ता स्थापित एवं प्रतिपादित करने में अपना सक्रिय सहयोग देते हैं.

साहित्य का प्रणयन करने वाला व्यक्ति ही साहित्यकार होता है. और जब किसी साहित्यकार की, किसी विलक्षण साहित्यकार की, किसी जन-मनोरंजक साहित्यकार की, लोक-मंगलकारी साहित्यकार की, समाज की गहन निराशा में आशा का संचार करने वाले साहित्यकार की भेदभाव की भावनाओं को अपनी रचनात्मकता से मिटाने और उनके बीच समन्वयवादी दृष्टि विकसित करने वाले साहित्यकार की चर्चा की जाएगी तो गोस्वामी तुलसीदास को सर्वप्रथम स्थान प्राप्त होगा.

"सद्गुण, सहृदयता, सदाशयता और मनुष्य के जीवन का वह प्रत्येक तत्त्व जो जीवन के लिए प्रेरणा का कार्य कर सके, उसको प्रमुखता से समाज के सामने प्रस्तुत करना चाहिए. तुलसी के युग से पहले कृष्ण की गीता आ चुकी थी और वाल्मीकि रामायण भी, महाभारत के अनेक प्रसंग समाज का मनोरंजन करने के लिए और समाज के सामने युद्ध का चित्रण करने के लिए थे. राजशाही किस तरह कार्य करती है, इसका उल्लेख करने के लिए पर्याप्त प्रसंग थे लेकिन तुलसी ने इनमें से किसी को भी नहीं चुना क्योंकि तुलसी चाहते थे एक अच्छे समाज का निर्माण. इसे हम आदर्श कह सकते हैं. लेकिन आदर्श यदि कोई लौकिक हो तो वह ज़्यादा प्रभावित करता है. अदृश्य हो तो प्रभावित नहीं करता. तुलसी ने राम को एक व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया. ऐसा व्यक्ति जो परिवार का एक सदस्य है, ऐसा व्यक्ति जो सामान्य जीवन से जुड़ा है, यद्यपि राजपाट से सम्बंधित राजघराने से सम्बंधित है.

तुलसी ने उस व्यक्ति का, जो समाज में विचरण करता है और उस आदर्श की स्थापना के लिए, जीवन के उन सभी अंगों को, पारवारिक जीवन के उन सभी पहलुओं को चित्रित करने का प्रयास किया है, जिससे सामान्य जन जुड़ा हुआ है.

समाज और परिवार में अनुशासन कैसे प्रतिष्ठा का रूप धारण कर सके, इसलिए विपरीत और उत्तेजनामय वातावरण होने के बाद भी अनुज होने के नाते तुलसी लक्ष्मण से कहलवाते हैं कि, "जो राउर अनुशासन पाऊँ" अर्थात् वय में अपने से बड़े व्यक्ति की उपस्थिति में उससे कम आयु के व्यक्ति को बिना अपने से बड़े की अनुमति के कोई कार्य नहीं करना चाहिए, यह परिवार और समाज को बाँधने वाले बहुत-से गुणों में से एक गुण है.

लोग "सियाराममय सब जग जानी" का उल्लेख करते हैं. इस पंक्ति को मैं इस रूप में देखता हूँ – नारी और पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं. एक-दूसरे के बिना जीवन अधूरा है. यदि उनमें आदर्श सम्बन्ध नहीं रहे तो जीवन नरक हो जाएगा और यदि एक नर नारी का जीवन नरक हुआ तो फिर दूसरा प्रभावित होगा ही और फिर सारे समाज का इसलिए जिस सियाराम की कल्पना की वह एक आदर्श नारी और एक आदर्श पुरुष की कल्पना है. ऐसा करके तुलसी ने कहा कि मैं एक ऐसे जगत् की कल्पना करता हूँ जहाँ सीता माता जैसी आदर्श नारी और राम जैसे आदर्श पुरुष हैं इसलिए "सियाराममय सब जग जानी" में मैं यह इच्छा प्रकट करता हूँ कि सीता और राम जैसे नर नारी जग में हों.

एक बात और कि आस्था का केंद्र कौन बन सकता है? हमने जिसे देखा नहीं, जो निराकार है वह अच्छा आस्था का केंद्र होगा या वह जो सद्गुणों से परिपूर्ण मानवता से लबालब, आपकी सम्वेदनाओं को समझता हुआ समाज की अगुआई करने में सक्षम है? यहाँ यदि इस प्रश्न का उत्तर तलाश करेंगे तो स्पष्टतया उत्तर शायद यही मिलेगा कि वह व्यक्ति जो बाद की श्रेणी में आता है. निराकार में अवगुण भी हो सकते हैं लेकिन जो दृश्य नहीं है, जिसे देख नहीं सकते वह कम प्रभावी होता है और जिसे देख सकते हैं उसकी छाप अमिट होती है, इसलिए उन्होंने भगवान् राम को व्यक्ति का स्वरूप देकर उनके अन्दर सद्गुणों को भी समाहित करने की चेष्टा की क्योंकि राम, जो जन-मानस से जुड़े हुए हैं, अयोध्या के महलों में रहते हुए जिनके लिए नगर-वासियों में अटूट प्रेम है क्योंकि वह नगर-वासियों की चिंता करते हैं, इसलिए सद्गुणों से परिपूर्ण व्यक्ति को चित्रित करने का उन्होंने प्रयास किया इसलिए जब राम वन जाते हैं और महाराज दशरथ जब उनको आज्ञा देते हैं तो बड़ी आसानी से इतने व्यापक समर्थन के साथ राम कह सकते थे कि पिताजी आप बहुत वृद्ध हो चुके हैं, अब आपके पास सही चिंतन नहीं है, इसलिए आप किनारे रहिए मैं यहीं राज्य करूँगा लेकिन यदि राम यह बात कहते तो राम आदर्श पुरुष की श्रेणी से नीचे गिर जाते इसलिए आज्ञा-पालक राम का चित्रण करके तुलसी ने इस व्यक्तित्व को समाज के सामने रखा, जो अपनी कठिनाईयों को छोड़कर, उनकी चिंता न करते हुए, शासक की आज्ञा का पालन करता है अर्थात् उस समय जो स्थिति थी, उनका पालन करने वाले व्यक्ति के इस रूप का चित्रण किया.

हमारे समतामूलक समाज की कल्पना तुलसी ने की है राम के द्वारा शबरी के जूठे बेर खाने में. मैं इसको एक और रूप में देखता हूँ शासक यदि अपनी प्रजा की विपन्नता में भागीदार बन जाए तो प्रजा की आस्था पैदा करने में सफल हो जायेगा. इसलिए राम का शबरी के जूठे बेर खाना शबरी के मन में अपने शासक परिवार के प्रति आस्था का जन्म देना तो था ही, लेकिन यह शासक का भी कर्तव्य है कि वह प्रजा की भावनाओं का आदर करे तथा जिस व्यक्ति के पास वह जाए उसके समानान्तरण होकर जाए, तब उसको प्रेम मिलेगा. तुलसी ने यह पाठ भी हमें पढ़ाया.

समुद्र पर सेतु बनाने के लिए वानर सेना ने अनेक पत्थर पानी में नल और नील वानर नायकों के नेतृत्व में डाले थे. वे पत्थर पानी में नहीं डूबे. न डूबने का अर्थ और कारण यह बताया कि इतनी अधिक संख्या में

पत्थर डाले गए थे वे पानी की सतह तक आ गए थे. इसीलिए वे डूबे नहीं और सेतु का पैदल चलने का उस पर मार्ग बन गया.

कर्म करने के लिए मनुष्य को प्रेरणा चाहिए. यदि भौतिक शास्त्र का विद्यार्थी है तो वह यह जानता है कि पानी में पत्थर डूब जाता है. यह भौतिक सत्य है और आज हम आश्चर्यचकित होते हैं कि वानर सेना ने पत्थर के ऊपर राम लिख दिया, उन पत्थरों को समुद्र में डाला तो वे समुद्र के जल के ऊपर तैरने लगे और राम की सेना लंका पहुँच गई. राम का नाम असंख्य वन-वासियों के लिए प्रेरणा का केंद्र बन गया था, प्रेरणा का स्त्रोत बन गया था. राम एक आदर्श पुरुष थे इसलिए जब आदर्श पुरुष को अपना प्रतिमान मानकर, उनको प्रेरणा-स्त्रोत मानकर लोगों ने परिश्रम किया तो उस परिश्रम की परिकष्ठा तब हुई जबकि जल में, सागर में, इतने पत्थर डाले गए कि ऊपर जल के स्तर तक वे पत्थर आ गए और मार्ग बन गया.

श्रद्धा का भाजन बनने के लिए व्यक्ति में कतिपय विशिष्ट गुण होने चाहिए. सीता और राम में ऐसे अनेक गुण विद्यमान थे, जिनके कारण जनमानस आज भी उन पर श्रद्धा करता है, अगाध आस्था रखता है.

स्त्री के कुछ स्वाभाविक गुण होते हैं. तुलसी ने सीता को एक आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया. आप उस सीता की कल्पना करें जो पेड़ के नीचे बैठी हुई हैं. जिनके पास तन ढकने के लिए कुछ नहीं है. चारों ओर से राक्षसियाँ पहरा दे रही हैं. रावण की कुदृष्टि से बचने के लिए कोई ओट चाहिए. यदि कुछ नहीं मिला तो पेड़ का तिनका, वह तिनका हया का जो पर्दा है, वह सीता के चेहरे को तो नहीं ढक सका, लेकिन नारी के गुण को तुलसी ने उजागर कर दिया कि हया नारी का एक बहुमूल्य गुण है. जिस समाज में और जिस व्यक्ति के अन्दर इस प्रकार के गुण होते हैं, उसके प्रति श्रद्धा क्यों न जाग्रत हो. श्रद्धा समाज को बाँधने वाली सबसे सशक्त जंजीर है इसलिए अपने काल के बिखरते हुए समाज को बाँधने की दिशा में संत तुलसीदास ने रामचरित मानस की रचना इसी उद्देश्य से की कि सामान्य भाषा में लिखा हुआ यह ग्रन्थ, लोक भाषा में लिखा हुआ यह ग्रन्थ जन-जन को प्राप्त हो सके. इस ग्राह्य साहित्य ने हमारी ईश्वर के प्रति, वैदिक राम और अलौकिक राम, सगुन राम और निर्गुण राम सबके प्रति एक अद्‌भुत आस्था को जन्म दे दिया जो आज भी मिटाए नहीं मिट सकी. धर्म आदर्श से जुदा हुआ है, धर्म सद्‌गुण से जुदा हुआ है, धर्म सद्व्यवहार से जुड़ा हुआ है इसलिए तुलसीदास ने कहा कि राजनीति धर्म के बिना व्यर्थ है. जीवन के कुछ ऐसे संकल्प होते हैं जिनमे मर्यादा न रहे तो समाज टूट जाएगा.

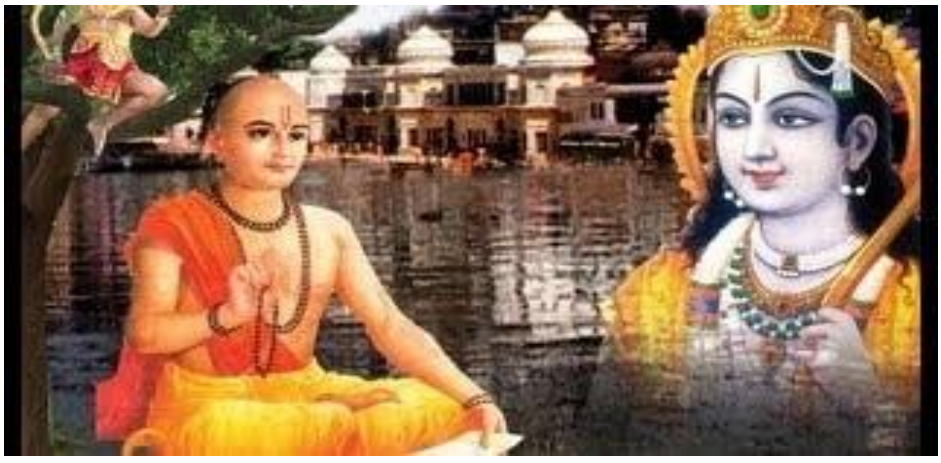

रामजी के आँसू

डॉ ओमप्रकाश गुप्ता

हाथ जोड़ मैं करूँ प्रणाम
सजल नयन करते तुम राम
हो तुम सकल सुखों के धाम
अश्रु बहाते फिर क्यों राम

चित्रकूट जबसे श्री राम
अवधपुरी सुमरें गुण धाम
भर लाते लोचन सुख धाम
सुमिर जनम भूमि को राम

भरत आगमन सुनके राम
भावाकुल होते सिया राम
करते विदा भरत को राम
लोचन भर लाते मेरे राम

बन में बसे मुनि निष्काम
अस्थि ढेर देखे श्री राम
राक्षस करनी देख के राम
अश्रु भर लाते श्री राम

गीधराज सेवक श्री राम
तजे प्रान कर सेवा राम
दुर्लभ गति दीनी श्री राम
भर लोचन दीना निज धाम

सीता दुःख सुनकर सुखधाम
भर आये लोचन प्रभु राम
हनुमत हृदय लगाएँ राम
भर लोचन पुलकित श्री राम

मूरछित लछमन देखे राम
हुए सोच बस सीता राम
भाई गवायों मैंने किस काम
मनुज भांति रोते श्री राम

करे विभीषण विनती श्री राम
करो कृपा आओ मुज धाम
सुनकर प्रेम वचन श्री राम
सजल नयन होते श्री राम

चढ़ पुष्पक लौटे श्री राम
देख अयोध्या पुलकित राम
सजल नयन होते श्री राम
रघुपति राघव राजा राम

मिलते भरत बंधु श्री राम
प्रेमाश्रु से सींचे श्री राम
भरत प्रेम की गाथा राम
बरन न सके स्वयं श्री राम

अंगद कहे न जाता राम
करूँ चरण सेवा श्री राम
सजल नयन बोले श्री राम
किष्किन्धा में तेरा काम

सनकादिक आये मिल राम
ऋषिगण हृदय पटल श्री राम
देख दशा उनकी सुख धाम
श्रवित नयन होते प्रभु राम

संचित भूख

पद्मश्री डॉ. नरेन्द्र कोहली

शाम के झुटपुट में वे दोनों तेजी से साइकिलें चलाते हुए भागे जा रहे थे।

रास्ते में कहीं कोई इक्का-दुक्का व्यक्ति मिला तो उन्हें देखकर चौंक गया। क्षण-भर उन्हें स्तब्ध दृष्टि से देख, फिर अपनी राह चला गया। उन्हें इक्के-दुक्के आदमी से डर नहीं लगता था, फिर भी वे अपनी साइकिलें तेज कर लेते थ। रास्ते में उन्हें कोई आग लगाती हुई भीड़ या हथियारबंद लोगों का झुंड नहीं मिला था। संयोग ही था कि पुलिस या मिलिट्री का कोई ट्रक भी नहीं दिखा था, नहीं तो कैंप से डिप्टी के बाग का फासला कम नहीं था।

वे ट्रंकों वाले बाज़ार तक आ गये थे। उनकी गली अब बीस गज से अधिक नहीं थी। सहसा उन दोनों ने अपनी साइकिलें धीमी कर दीं। गोपाल ने मुड़कर बिरजू की ओर देखा और मुस्कराया।

बिरजू के चेहरे से घबराहट धुल गई। वह काफी आश्वस्त हो गया था। असावधान वह फिर भी नहीं लग रहा था।

'साइकिल की घंटी मत बजाना गोपाल बाबू।' बिरजू फुसफुसाया।

'क्यों?' गोपाल ने अपनी घनी काली भवें ऊपर उठाईं।

'यहाँ कोई छुपा बैठा हो तब?' बिरजू ने कहा, 'आप घंटी बजाएँगे और वह अँधेरे म ही छुरा पेट के आर-पार कर देगा।'

'यहाँ कोई नहीं है।' गोपाल ने साइकिल का अगला पहिया अपनी गली की कूचाबंदी के भीतर कर दिया, 'अपनी गली में क्या डर?'

. .गली के पहले घर 'कृष्णा कॉटेज' की डयोढ़ी में से सहसा कोई झपट कर निकला और उनके सामने खड़ा हो गया, 'कौन हो?'

दोनों ने देखा, सामने खड़ा व्यक्ति कोई दंगई नहीं था। एक सैनिक बंदूक पर संगीन चढ़ाए, तना हुआ उनके सामने खड़ा था - बलोच था शायद ! हाँ बलोच ही था। उसका सुर्ख कठोर चेहरा, उसके लम्बे भूरे बाल, उसकी लाल टोपी और फिर वह कड़कती आवाज़ ! हाँ, बलोच ही था। तो उनका मोहल्ला भी मिलिट्री के अधिकार में था।

'कोन हो?' उसने धमकाकर पूछा और बंदूक उठाई।

'मैं गोपाल हूँ, और वह विरजू।' गोपाल ने थूक गटक कर अपना निरर्थक परिचय दिया और उसका चेहरा तकने लगा।

'यहाँ क्या करने आये हो?' बलोच ने पूछा। उन्हें घबराया देख उसने अपनी बंदूक नीची कर ली थी।

गोपाल कुछ आश्वस्त हुआ - नहीं वह उनको मारेगा नहीं। वह मिलिट्री का सिपाही था, गुंडा नहीं था।

'हम अपने घर आये हैं।' गोपाल ने कुछ खुले गले से कहा, 'गली का पाँचवाँ मकान हमारा है।'

'अपने मकान में लौटना था तो पहले छोड़कर भागे क्यों थे?' बलोच हँसा।

'कल महल्ले पर मुसलमानों ने हमला कर दिया था।' गोपाल ने कहा, 'दो मकानों को तो आग भी लगा दी गई थी। इसीलिए भाग गए थे।'

'तो आज क्या करने आए हो?' बलोच के स्वर में जिज्ञासा कम, व्यंग्य अधिक था।

गोपाल डरी आँखों से क्षण-भर उसे ताकता रहा, फिर सिर झुकाकर बोला, 'मेरी माँ बहुत बीमार है। वह बिना बिस्तर के सो नहीं सकती। हम बिस्तर लेने आए हैं।'

बलोच खूब जोर से हँसा, 'लड़के, तुम्हारी माँ को अपना बिस्तर तुम्हारी जान से ज्यादा प्यारा है ! रास्ते में कोई छुरा मार दे या. . . .' वह रुका, '. . . .कर्फ्यू में घूमने के जुर्म में मैं ही बंदूक दाग दूँ तो क़यामत तक बिना बिस्तर के सोये रहोगे।'

वह अपने हाथ में बंदूक तौल रहा था।

दोनों सन्न रह गए। थोड़ी देर पहले तक की उनकी निश्चिंतता जम गई थी। बिरजू के जबड़े कस गए थे और उसके मुँह में बदमज़ा खट्टा-खट्टा पानी जमा होने लगा था।

और स्वयं उसे पता नहीं चला कि कब उसका निचला होंठ फैल गया। वह रो रहा था, 'मैं तो नौकर हूँ। गोपाल बाबू अपनी माँ के लिए बिस्तर लेने जा रहे थे, मुझे भी लालाजी ने साथ कर दिया कि कुछ चीज़ें ले आऊँ।'

'नौकर!' बलोच ने बंदूक फिर नीचे कर ली। और सहसा उसका स्वर बदल गया। गहरी रौबदार आवाज़ में वह बोला, 'अच्छा जाओ अपने मकान में। रात-भर चुपचाप पड़े रहो। अंदर से दरवाज़ा बंद मत करना और बाहर भी मत निकलना। कर्फ्यू लगा है। सुबह तक बचे रहे तो कर्फ्यू खुलने पर चुपचाप कैंप को लौट जाना। और देखो, कोई सामान-वामान लेकर नहीं जाना है। सामान ले जाने में जान का खतरा है। जाकर उन बेवकूफों को समझा दो, जिन्होंने तुम्हें भेजा है।'

वे दोनों बहुत धीरे से साइकिल ठेलते हुए आगे बढ़ गए। बिरजू पलटकर पीछे देख रहा था, कहीं उनके आगे बढ़ते ही बलोच पीछे से गोली न मार दे। पर वैसा कुछ नहीं हुआ। बलोच अपनी जगह खड़ा चुपचाप उन्हें देखता रहा और फिर दो-तीन छँलागों में कृष्णा कॉटेज की डयोढ़ी में गायब हो गया।

बिरजू ने गोपाल की चिंता नहीं की। झपटकर उसने अपने मकान का ताला खोला और डयोढ़ी में जा पहुँचा।

'गोपाल बाबू ! अब तुम भी इधर ही आ जाओ।' उसने कहा और भीतर गायब हो गया।

गोपाल उसके पीछे-पीछे भीतर चला गया। बलोच ने कहा था, कर्फ्यू में बाहर नही जाना है और फिर सुबह भी कोई सामान लेकर नहीं जाना है। फिर वह अपने मकान के ताले खोलकर क्या करेगा? गली में बलोच मिलिट्री है और गली के बाहर फसादी मुसलमान। वह अपने मकान में अकेला क्या करेगा? दो ही तो वे जने हैं, अच्छा है कि दोनो एक ही मकान में साथ-साथ रहें।

उसने अपने पीछे आँगन का दरवाज़ा भिड़ा दिया। बलोच ने कहा था दरवाज़ा अंदर से बंद मत करना। कहीं वह देखने ही न आ जाए। उसकी बात मानने मे ही उनकी भलाई थी, नहीं तो एक बार बंदूक दागना उसके लिए क्या मुश्किल था। वह आँगन में आकर खड़ा हो गया।

बिरजू भी उसे देख कर बाहर निकल आया। वह शायद गुसलखाने में छिपा हुआ था। उसके चेहरे का रंग एकदम सफेद था और उसकी आँखें अभी भी फटी हुई थीं।

'वह हमको मारेगा तो नहीं?' उसने बहुत धीरे से पूछा।

'अपनी नाक पोंछ ले, बह रही है।' गोपाल ने कहा।

गोपाल धीरे-धीरे चलता हुआ ड्राइंग-रूम में चला गया। वह लालाजी की बैठक थी। उन्होंने अपनी दोनों पत्नियों की तस्वीरें **बड़े समारोह से दीवारों पर टाँग रखी थीं** ...

'गोपाल बाबू ! वह....।'

उसने बिरजू को देखा। वह भी उसके पीछे-पीछे ड्राइंग-रूम में आ गया था और शायद अब भी जानना चाहता था कि बलोच सिपाही उन्हें मारेगा तो नहीं।

गोपाल उसे पिछले दो वर्षों से देख रहा था, जब से वह लालाजी के घर नौकर हुआ था। पर शायद उसने इतने ध्यान से उसे कभी भी नहीं देखा था। बारह-चौदह वर्षों का यह पहाड़ो लड़का, साफ-सुथरे कपड़े पहनता तो शायद सुन्दर कहलाता। रंग उसका गोरा था, नाक तीखी थी, उठी हुई और पता नहीं उसकी आँखों का रंग हल्का नीला कैसे था। इस समय वह डरे हुए चूज़े के समान उसके पीछे-पीछे मँडरा रहा था।

'देख बिरजू !' गोपाल ने कुछ स्थिर स्वर में कहा, 'हमें रात यहीं काटनी है, तू जानता है। फिर भूखे तो नहीं रहा जाएगा। कुछ खाना-वाना पका और बलोच की बंदूक को भूल जा।'

खाना !' बिरजू ने नाक से सड़ूँ किया और आँखें उलटी हथेली से पोंछ डालीं, कैंप में चल कर बना दूँगा। गोपाल बाबू, पहले यहाँ से निकलो।' वह बहुत दीन हो गया था, 'मुझे उस बलोच से बहुत डर लगता है।'

'देख बिरजू !' गोपाल ने उसे समझाया, 'डरने से काम नहीं चलेगा। रात को हमें यहाँ रहना ही है। रात-भर टिके रहे तो शायद सबेरे बच कर निकल जाएँ। रात को निकलने की कोशिश की तो बस ठाँय।'

'ठाँय !' बिरजू के मुँह से अनायास निकला। उसकी आँखें जैसे फट-सी पड़ों और वह गिरने के-से अंदाज़ म ज़मीन पर बैठ गया। उसके चेहरे पर इस मौसम में भी पसीने की बूँदें उभर आई थीं। वह बदहवास-सा गोपाल को फटी आँखों से घूरे जा रहा था।

गोपाल उसकी हालत देख कर परेशान हो गया। वह पहले ही कम चिन्तित नहीं था। यह पता चलने पर कि दो हिन्दू अभी भी इस मकान में हैं - कोई भो आकर इस मकान पर मिट्टी का तेल या पेट्रोल छिड़क कर आग लगा सकता था। मकान को आग न भी लगे तो भी उसके लिए छुरे का एक हाथ ही पर्याप्त था या फिर बलोच सिपाही की गोली....उसने कहा था, अगर सबेरे तक बचे तो....पता नहीं सबेरे तक बचना है या नहीं ! और ऊपर से बिरजू की हालत....!

कल रात जब मुहल्ले पर एक बड़ो भीड़ ने हमला कर दिया था तो मुहल्ले की सुरक्षा-समिति का सारा प्रबंध एक क्षण में ही छिन्न-भिन्न हो गया था। भीड़ के दहाड़ते हुए नारे, 'अल्लाहो अकबर' के उत्तर में सुरक्षा-समिति के स्वयंसेवकों ने बहुत डरे हुए स्वर में 'जय बजरंग बली' कहा था; पर लड़ाई नहीं हो सकी थी। दो मकानों को आग लगी और लोग भाग खड़े हुए।

उस समय शायद किसी ने भी कोई सामान साथ नहीं लिया था। सबको अपनी-अपनी जान की पड़ो थी, सामान की कौन सोचता ! तब वह स्वयं कैसे अपनी बीमार माँ के साथ कैंप तक पहुँचा था, उसे याद नहीं है। सारी की सारी रात भागदौड़ में कट गई थी। पर सवेरे से जब कैंप में स्थिरता आई और डोगरा मिलिट्री के पहरे में उन लोगों में सुरक्षा की भावना आई, तब से उसके मन में यह चिन्ता घर कर गई थी। माँ पिछले पाँच वर्षों से बीमार चली आ रही थी। उसे कैंप में मिलिट्री वालों की दी हुई केवल एक दरो बिछाकर सुलाने से क्या यह अच्छा नहीं था कि वह उसे घर पर ही छोड़ आता। जब तक जीती, आराम से रहती और फिर किसी दंगई के हाथों मारी जाती।

दिन-भर वह माँ की तकलीफ देखता रहा था और सोचता रहा था। जब शाम ढलने लगी और उसके सम्मुख एक लम्बी रात आ खड़ो हुई, तब माँ के सुलाने की समस्या उसके सामने थी। यदि माँ को इसी प्रकार रात काटनी पड़ती तो शायद वह सवेरा न देखती। और सारे कैंप में कोई ऐसा आदमी नहीं था, जो उसे एक खेस या चादर भी दे सकता।

ऐसे हो क्षणों में उसने वापस लौटने का निर्णय लिया था। उसे पूरा विश्वास था कि उनके घर जले नहों होंगे, लुटे नहीं होंगे। वे जैसे ताले बंद करके आए हैं, वैसे ही होंगे।

उसने चाहा था कि कुछ लोग और भी उनके साथ चलें, पर एक बार निकल कर, फिर कोई मौत के पंजों की ओर लौटने को तैयार नहीं था। केवल उसके पड़ोसी लालाजी ने अपने नौकर बिरजू को साथ कर दिया था कि वह भी उनके कुछ कपड़े ले आएगा। बिरजू या तो अपने मालिक की बात अस्वीकार नहीं कर सका था या फिर शायद उसे अंदाज़ ही नहीं था कि घर लौटना कितने जोखिम का काम है। और गोपाल ने भी साथ पा लेने के भाव से उसे स्वीकार कर लिया था।....

उसने हाथ पकड़कर बिरजू को उठाया, 'उठ बे ! क्या पागलपन कर रहा है !'

'बाबूजी ! गोपाल बाबू !' बिरजू हकलाता जा रहा था। वह अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो पा रहा था।

गोपाल ने अपनी पूरी ताकत से उसे उठा कर खड़ा कर दिया, 'उठ ! खड़ा हो !'

वह खड़ा हो गया और फिर गोपाल और बिरजू की नज़र एक साथ ही उसके गीले पायजामे पर जा पड़ो। गोपाल समझ गया कि वह खड़ा क्यों नहीं हो रहा था।

'जा ! जाकर कपड़े बदल।' गोपाल ने कुछ सख्त आवाज़ में कहा।

'मेरे पास और कपड़े नहीं हैं।' बिरजू शायद रो रहा था, 'लालाजी ने कल कहा था कि वे मुझे नया पायजामा बनवा देंगे।'

गोपाल सहसा खीझ उठा, 'पागल मत बन। सारे घर की चाबियाँ तेरे पास हैं। चाहे लालाजी की गर्म पतलून पहन ले, तेरा कोई हाथ पकड़ लेगा?'

'लालाजी को पता चला तो?' बिरजू ने कहा।

'अबे लालाजी अब लौटेंगे क्या !' गोपाल बोला, 'सब कुछ पाकिस्तान में ही रह जाएगा। जो पहन सकता है, पहन ले। जो खा सकता है, खा ले। कोई कुछ नहीं कहेगा। सारा घर तेरा है।'

गोपाल की बात का बिरजू पर चमत्कारी प्रभाव पड़ा। उसके चेहरे का रंग बदल गया। वह जैसे अपनी खुशी रोकने का प्रयत्न कर रहा था। उसकी आँखों में एक शैतानी मुस्कराहट आ गई थी। वह भूल गया था कि अभी कुछ ही देर पहले उसने डर के मारे, पायजामें में पेशाब कर दिया था। कोई बात उसके होंठों तक आते-आते रुक रही थी और वह बार-बार गोपाल की ओर देख कर आँखें झुका ले रहा था।

'क्या बात है?' गोपाल ने पूछा।

'मैं लालाजी की गर्म पतलून पहन लूँ' उसने कहा।

गोपाल ने क्षण-भर उसे ताका, तो यह बात थी। उसे बिरजू की मूर्खता पर हँसी भी आ रही थी और क्रोध भी। 'पहन ले?' उसने कहा।

'और अगर लालाजी नाराज़ हुए? बिरजू ने फिर पूछा।

'कह देना गोपाल बाबू ने कहा था।'

'और.... '

'अब और क्या है?' गोपाल के जी म आया, उसे एक चाँटा लगा कर कहे, 'साले, यह तेरे नखरे करने का समय है !'

'और....और....।' बिरजू फिर वैसे ही मुस्करा रहा था, 'मैं अपने लिए भी बासमती के महीन चावलों का पुलाव बना लूँ, जैसे लालाजी के लिए बनाया करता था?'

'बना ले, साले, बना ले।' गोपाल दाँत पीस कर भिंचे हुए स्वर में बोला।

बिरजू ने नज़र उठा कर उसे देखा। मद्धम-सी हँसी हँसा और बरफ-मलाई खाने के लिए माँ से पैसे लेकर गली की और जाते हुए खिलंडरे ल के के समान भाग गया।

गोपाल फिर अपने विषय मे सोचने लगा था। यदि वह कैंप तक लौट नहीं पाया तो उसकी बीमार माँ ..क्या इससे अच्छा यह नहीं था कि वह माँ के आराम की चिंता छोड़ अपने जीवन की चिंता करता। माँ को अीधक नहीं जीना था और उसके सामने अभी सारी ज़िन्दगी पड़ो थी। अभी तो दंगे-फसाद के बीच में वह अपने भविष्य के विषय में सोच नहीं पाता था, पर कभी तो शांति होगी। हिन्दुस्तान में जाकर तो वे नया जीवन आरम्भ कर सकते थे। जब वहाँ जाकर सरला को पता चलेगा कि वह माँ के लिए बिस्तर लेने के लिए वापस घर लौटा था और फिर उसे किसी ने नहीं देखा था, तो वह क्या करेगी....

सरला....सरला किस कैंप में होगी....?

और सहसा उसकी नाक में तेज़ गध आई ! क्या घी? हाँ, शुद्ध देसी घी था, जिसकी खुशबू चारों ओर फैल रही थी। शायद बिरजू पुलाव बना रहा था।....'यह साला मरवाएगा मुझे भी' - वह आशंकित हो उठा - 'यह नहीं कि सादा-सा कुछ बना ले, जो खाकर हम पड़े रहें। उल्ट असली घो की गंध उ ा कर अपने यहाँ होने का विज्ञापन कर दंगाइयों को बुला रहा है। अभी एक छुरा पेट को आँतें निकाल कर थाली में सजा देगा तो फिर खाता रहे पुलाव।'

वह बिना आवाज़ किए, पैर दबा-दबाकर, जितनी जल्दी सम्भव था, लालाजी की रसोई में पहुँचा।

इतनी ही देर में बिरजू एकदम बदल गया। वह बीच रसोई में पालथी मारकर निश्चिंत बैठा था। उसके चारों ओर रसोई की हर चीज़ बिखरी पड़ो थी। मिर्च-मसाले, घी, दालें, कल की लाई हुई सब्जियाँ, विभिन्न प्रकार के चावल, जैसे वह उनमें चुनाव करता रहा हो। वह मस्त होकर स्टोव पर चढ़े हुए पतीले में प्याज भूँज रहा था शायद। सहसा बिरजू को किसी के वहाँ होने का अहसास हुआ और वह अचकचाया हुआ आँखों में आशंका लिए हुए मुड़ा। पर उसकी आँखों में वह भय नहीं था, जो थोड़ो देर पहले गोपाल ने देखा था।

बिरजू उसके आर-पार देखता रहा, जैसे उसे पहचान न पा रहा हो। फिर उसकी आँखों में पहचान लौटी। वह खिसियानी-सी हँसी हँसा, 'मुझे लगा जैसे बीबीजी आ गए हैं। तभी तो समझ नहीं सका कि बीबजी ने अपनी सुत्थन की जगह लालाजी का पैजामा क्यों पहन रखा है....।'

गोपाल के जी में आया, कहे, 'साले तुझे बीबीजी और लालाजी का डर लग रहा है। छुरे और बंदूक का डर नहीं है।'

पर उसने कुछ कहा नहीं। बिरजू लालाजी की गर्म पतलून पहने अपनी रसोई में निश्चिंत था। उसे यदि फिर से बाहर खड़ा बलोच सिपाही याद दिला दिया जाता तो इस बार शायद रसोई भी गंदी करता।

गोपाल चुपचाप लौट आया। अच्छा है कि वह अब बिरजू के मारे परेशान नहीं था। वह बिना डिस्टर्ब हुए सोच सकता था और कैंप तक लौटने को समस्या पर ध्यान दे सकता था।

यह निश्चित था कि वह सुबह तक यहाँ रुकना नहीं चाहता था। पता नहीं सुबह की नौबत भी आए या नहीं। और फिर सूरज के उजाले में यहाँ से कैंप तक जाने का कोई अर्थ ही नहीं था। वह अगले मुहल्ले तक भी नहीं पहुँच पाएगा। रात में यदि वे लोग कूचाबंदी क भीतर वाले सिपाही की नज़र बचा कर ट्रंकों वाला बाज़ार पार कर सकें तो बहुत है। बाहर सड़क पर कर्फ्यू के कारण कोई नहीं मिलेगा। पुलिस या मिलिट्री का कोई सिपाही मिला भी तो यदि वे लोग भागने की कोशिश न करें और पकड़े जाएँ और यह प्रकट करें कि हमला होने पर वे घर से भागे है तो वे लोग या तो उसे किले वाले जेल में ले जाएँगे या कैंप में। दोनों ही स्थितियों में वे सुरक्षित हैं।....पर यदि रात वाले बलोच ने कूचाबंदी से बाहर निकलते हुए देख लिया तो वह समझ लेगा कि जान-बूझकर भाग रहे हैं। वह अवश्य उन्हें गोली मार देगा।

वह सिहर-सा गया, कच्ची और ठंडी मिट्टी पर बिछी दरी पर तड़पती हुई माँ उसकी आँखों में घूम गई और फिर सरला, सरला ने गोटे वाली साड़ो पहन रखी थी जो उसने फेरों के लिए बनवाई थी, सुच्चे गोटे वाली साड़ो।

'गोपाल बाबू ! आ जाओ। रोटी खा लो।' उसने बिरजू की आवाज़ सुनी, और वह उछल कर अपनी जगह खड़ा हो गया।

'आहिस्ता गधे, आहिस्ता !' वह बुदबुदाया और भागता हुआ रसोई में चला गया।

बिरजू ने दो बड़ो-बड़ो थालियाँ परोस रखी थीं। बढ़िया बारीक बासमती चावल। तैरता हुआ शुद्ध देसी घी। इलायची, दालचीनी, मटरों तथा धनिए के ढेर।

बिरजू सातवें आसमान पर उड़ रहा था। उसे इतना निश्चिंत और प्रसन्न गोपाल ने पहले कभी नहीं देखा था। बिरजू उसे देख कर हँसा। 'घी और डालूँ गोपाल बाबू?' उसने देसी घी के पीपे में हाथ डाला।

'बस, ओए बस !' गोपाल ने उसे झिड़क दिया, इतना कौन खाएगा? तू तो दावत करने बैठा है।'

'और खाओ गोपाल बाबू !' बिरजू को परिस्थितियों का कोई अहसास नहीं था, 'अभी तो बहुत सारा है।'

गोपाल के मन में वितृष्णा-सी घिर आई थी। उसका मन खाने को नहीं कर रहा था। एक बार तो जी में आया कि वह खाने को मना कर दे, पर फिर टाल गया। खाने की बात उसी ने तो चलाई थी। अब कैसे कह दे कि उसे भूख नहीं है !

'अरे ठहरो गोपाल बाबू !' बिरजू सहसा उठ गया, 'मैं तो भूल ही गया।'

वह उसे देखता ही रह गया। और बिरजू मियानी की सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर चला गया। ऊपर से उसके गुनगुनाने का स्वर भी आ रहा था और गोपाल का मन डूबता जा रहा था - इस लड़के की हरकतों से आज कोई अनर्थ होगा।

बिरजू लौटा तो उसके एक हाथ में गोभी के मीठे अचार का मर्तबान था और दूसरे में सेव के मुरब्बे का।

चाँदी के बरक़ भी है। लाऊँ?' उसने कहा, 'मुरब्बे पर लगा कर खाएँगे।'

'बैठ यहाँ।' गोपाल को आखिर कहना ही पड़ा, ज़्यादा हुडदंग मत मचा कि बलोचों की नीयत खराब हो और वे तेरो दावत खाने आ पहुँचें। वे एक ही गोली में तेरा पेट भर देंगे।'

बिरजू ने क्षण-भर को बुरा-सा मुँह बनाया और अपनी थाली की ओर झुक गया। पुलाव के दो-चार बड़े-बड़े कौर खाते ही उसका मूड ठीक हो गया। उसने मुरब्बे के कई टुकड़े अपनी थाली में डाल लिए थे।

वह बहुत तेजी से खाता जा रहा था। 'बिरजू !' गोपाल ने कहा, 'इस हिसाब से खाना कि तबीयत खराब न हो।'

'परवाह मत करो, बाबूजी।' बिरजू पुलाव से भरे हुए मुँह से गपगपाता हुआ बोला, 'लालाजी रोज़ खाते थे, उनकी तबीयत कभी खराब नहीं हुई। उल्टे, देख-देख कर मेरी ही तबीयत खराब होती रहती थी।'

'सुन ओए !' गोपाल का स्वर कुछ और तीखा हो गया था, हमें सोना नहीं है, रात भर जागना है। बारी-बारी पहरा देना है और अवसर मिलते ही खिसक जाना है, हमें रातों-रात कैंप में पहुँचना है....।'

'अच्छा।' बिरजू ने बड़ो बेरुखी से कहा और दो चम्मच घी अपनी थाली में और डाल लिया।

'मुझे काफी देर से भाबड़ों के मुहल्ले में हलचल-सी सुनाई पड़ रही है। वहाँ शायद आज रात हमला हो। हो सकता है, यहाँ भी कोई आ जाए।' गोपाल ने उसे फिर चेताया।

'अच्छा-अच्छा।' उसने बेरुखी से कहा और पानी का गिलास पीकर लम्बा-सा डकार लिया और फिर खाने में जुट गया।

गोपाल ने अब तक दो-चार कौर खाए थे, वे उसकी छाती पर ही पड़े थे। उसे उबकाई-सी आ रही थी। और खाता तो शायद उल्टी हो जाती। उसने हाथ रोक लिया। वह और नहीं खाएगा। वह उठा और बाल्टी से पानी लेकर हाथ धोने लगा।

बिरजू ने एक बार, 'अरे और खाओ न गोपाल बाबू' से अधिक कछ नहीं कहा। बह खाता रहा।

गोपाल उठ कर डयोढ़ो में चला गया, उसने भिड़ाया हुआ बाहरी दरवाज़ा हल्के से खोला और बाहर झाँका। गली में अँधेरा और शांति थी। कूचाबंदी के साथ वाले मकान 'कृष्णा कॉटेज' का दरवाज़ा खुला हुआ था, जहाँ से बलोच सिपाही बाहर आया था। उन्होंने शायद वहाँ आग जला रखी थी। थोड़ो-सी रोशनी गली में भी झाँक रही थी। 'इधर से बाहर नहीं जाया जा सकता' - उसने सोचा।

गली के दूसरे सिरे पर गुज्जरों के कुछ घर थे। उधर भी हल्की-हल्की आवाज़ें आ रही थीं। उधर से जाना भी मुश्किल था। एक ही रास्ता था कि वह चाची रेशमाँ के घर चला जाए। वह मुसलमान थी तो क्या हुआ। वह उससे कितना प्यार करती थी। और फिर जबसे उसके बेटे सलामत की मृत्यु हुई थी, उसने गोपाल को लगभग अपना बेटा ही माना था।....और कोई रास्ता नहीं था। चाची रेशमाँ का घर गुज्जरों के घरों के साथ मिला हुआ था। वह चाहेगी तो अभी या बाद में, किसो समय उन्हें बाहर निकाल देगी....

उसने हल्के से दरवाज़ा भिड़ा दिया और घर के भीतर लौट आया।

बिरजू रसोई में नहीं था। वह बैठक में भी नहीं था, गोपाल को वह लालाजी के सोने के कमरे में मिला। वह लालाजी के गद्देदार पलंग पर रज़ाई ओढ़ पड़ा था। पलंग की साथ वाली तिपाई पर लालाजी का हुक्का पड़ा था। नली हाथ में लिए बिरजू हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। चारों ओर सुगधित तम्बाकू की गंध उड़ रही थी।

'बिरजू !' गोपाल ने अपने गले से निकली चीख को बड़ो कठिनाई से भींचा।

'आओ गोपाल बाबू !' बिरजू ने खिसक कर उसके लिए जगह बनाई, 'आओ बैठो। हुक्का पियोगे?'

गोपाल को लगा, बिरजू ने घी नहीं खाया, अफीम खाई है। उसकी आँखों मे गुनूदगी थी। वह आधा सोया हुआ लग रहा था। जैसे सोये-सोये या गहरे नशे में बड़ो मुश्किल से उसने आँखें खोली हों और वे फिर से झपक जाने को तैयार हों।

गोपाल उसे घूरता रहा। पर बिरजू पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह पहले ही सो चुका था और सोए-सोए ही हुक्का गुड़गुड़ा रहा था, जैसे छोटा बच्चा, सोए-सोए आदतवश ही दूध पी लेता है।

'बिरजू, हमें सोना नहीं है।' गोपाल ने झुककर उसके कान में कहा, 'हमें रात-भर बारी-बारी पहरा देना है।'

'अच्छा।' बिरजू वैसे ही नशे में बोला, 'दे लेंगे। पहले थोड़ा आराम कर लूँ।' और गोपाल के देखते-देखते ही बिरजू, हुक्के की नली मुँह में लिए करवट बदल कर सो गया।

गोपाल हतप्रभ-सा खड़ा उसे देखता रहा। उसके कान बाहर से आने वाली आवाज़ों पर लगे हुए थे। किसी दूर के मुहल्ले से चीख-पुकार की आवाज़ें आ रही थी, जो बलोच सिपाहियों के ऊँचे कहकहों में डूब गई थीं।

तेरा है

पद्मश्री डॉ. अशोक चक्रधर

तू गर दरिन्दा है तो ये मसान तेरा है,
अगर परिन्दा है तो आसमान तेरा है।

तबाहियाँ तो किसी और की तलाश में थीं
कहाँ पता था उन्हें ये मकान तेरा है।

छलकने मत दे अभी अपने सब्र का प्याला,
ये सब्र ही तो असल इम्तेहान तेरा है।

भुला दे अब तो भुला दे कि भूल किसकी थी
न भूल प्यारे कि हिन्दोस्तान तेरा है।

न बोलना है तो मत बोल ये तेरी मरज़ी
है, चुप्पियों में मुकम्मिल बयान तेरा है।

तू अपने देश के दर्पण में ख़ुद को देख ज़रा
सरापा जिस्म ही देदीप्यमान तेरा है।

हर एक चीज़ यहाँ की, तेरी है, तेरी है,
तेरी है क्योंकि सभी पर निशान तेरा है।

हो चाहे कोई भी तू, हो खड़ा सलीक़े से
ये फ़िल्मी गीत नहीं, राष्ट्रगान तेरा है।

राष्ट्रभाषा का सवाल सुलझाना होगा

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
(कुलपति महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा)

इस बात से शायद ही किसी को असहमति हो कि समाज को अपने काम चलाने के लिये भाषा की जरूरत लाजिमी है. भाषा से न केवल विचार की अभिव्यक्ति होती है, पारस्परिक संवाद होता है, ज्ञान का संरक्षण और पीढियों के बीच संचार होता है बल्कि स्वास्थ्य, न्याय, बाजार, व्यापार, शिक्षा और प्रशासन आदि के रोजमर्रे के कामों में भी भाषा का उपयोग अनिवार्य है. यानी समाज अपने कामों को भाषा के जरिए ही अंजाम देता है. इन सारे कामों का जीवन में महत्व इतना अधिक है कि भाषा का होना हमारे अस्तित्व से एकाकार हो उठता है, इतना कि भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे कुछ एक अपवादों को छोड़ दें तो बड़े-छोटे अधिकांश देशों का नाम उन देशों की भाषाओं से अभिन्न रूप से जुड़ा होता है. वैसे तो कहा जाता है 'नाम में क्या रखा है' परन्तु भाषा का नाम समुदायों और देशों की पहचान बन जाता है. चीन, जापान, जर्मनी, फ्रांस, स्वीडन, इंग्लैंड आदि नाम मूलत: भाषाओं से जुड़े हुए हैं और समाज का जातिगत बोध और स्वाभिमान दर्शाते हैं.

भाषा हमारे अनुभव जगत का समानांतर चित्रण करती चलती है और अमूर्त प्रतीकों की सहायता से एक प्रतिरूप खड़ा करती है जिसे ग्रहण करना सुकर होता है. साथ ही भाषा हमें दुनिया को देखने का एक नजरिया भी देती है और उसी के सहारे हमें दुनिया का दर्शन होता है. भाषा जो भी दिखाती या छुपाती है वहीं तक हमारी दुनिया भी विस्तृत या सीमित होती है. इसलिए भारतीय चिंतन में ठीक ही कहा गया - "सर्वं शब्देन भासते" अर्थात् हमें सब कुछ शब्द से ही दिखता है. ऐसे में अपनी भाषा के उपयोग का अवसर यदि किसी व्यक्ति, समुदाय और समाज को सशक्त बनाता है तो उससे वंचित करना उस समाज को कई तरह से विपन्न भी कर देता है. लम्बे समय के लिए ऐसा होना पूरे समाज को असमर्थ बना देता है. इस तरह भाषाई भेदभाव आर्थिक-सामाजिक शोषण का एक सभ्य और सेकुलर तरीका बन जाता है जिसके प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दूरगामी परिणाम होते हैं जिनका असर आनुवंशिक न होते हुए भी आनुवंशिक से किसी भी तरह कम नहीं होते. भाषा की गुलामी के परिणाम पीढी-दर-पीढी संक्रमित हो कर आगे चलते रहते हैं .

भारत की भाषाई स्थिति अपनी विविधता और उपलब्धि के लिए विश्व के भाषा के विद्वानों के लिए किसी चमत्कार से कम नहीं है. पाणिनि का 'अष्टाध्यायी' वैश्विक स्तर पर भाषाविज्ञान का गौरव का विषय है. यहाँ की अनेक भाषाएँ साहित्य और शब्द भंडार की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध हैं और अनेक आपस में कई तरह से सम्बंधित भी हैं. इन सभी भाषाओं का भारत में लम्बा इतिहास भी है. यह स्वाभाविक है कि प्रयोग की दृष्टि से भाषाओं के क्षेत्र भिन्न होते हैं. अनेक भारतीय भाषाएँ संस्कृत मूल की हैं और उनके बीच निकट का रिश्ता है. परन्तु औपनिवेशिक युग में अँग्रेजी भाषा को अँग्रेजों ने भारतीयों की मानसिक रूप से हत्या करने का औजार बनाया और अँग्रेजी का साम्राज्य स्थापित किया. गाँधी जी के शब्दों में कहें तो मेकाले ने "शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी". अँग्रेज बहुत हद तक अपने लक्ष्य को पाने में सफल भी हो गए. विचार, नीति और सिद्धांत का जो साँचा ढाल कर उन्होंने हमको मुहैया कराया गया वह इस कदर मन-मस्तिष्क

पर चढ़ा कि हम मूल भारत के विचार से अपरिचित होते चले गए और जानबूझ कर अपने आप को विस्मरण का शिकार बनाते चले गए. दूसरी ओर अँग्रेजी चाल-ढाल, बानक और विचार को सहज और श्रेष्ठ भी करार देने लगे. 'हिंद स्वराज' में गाँधी जी का मार्मिक वाक्य कि 'अँग्रेजी शिक्षा को लेकर हमने अपने राष्ट्र को गुलाम बनाया है. अँग्रेजी शिक्षा से दम्भ, राग, जुल्म वगैरा बढे हैं. अँग्रेजी शिक्षा पाए हुए लोगों ने प्रजा को ठगने, उसे परेशान करने में कुछ भी उठा नहीं रखा है' आज का भी सत्य है. सन 1941 में 'रचनात्मक कार्यक्रम' में गाँधी जी लिखते हैं कि 'हमने अपनी मातृ भाषाओं के मुकाबले अँग्रेजी से ज्यादा मुहब्बत रखी, जिसका नतीजा यह हुआ कि पढ़े-लिखे और राज नैतिक दृष्टि से जागे हुए ऊँचे तबके के लोगों के साथ आम लोगों का रिश्ता बिल्कुल टूट गया और उन दोनों के बीच खाई बन गई. यही वजह है कि हिंदुस्तान की भाषाएँ गरीब बन गई हैं और उन्हें पूरा पोषण नहीं मिला'. दूसरी ओर सरकारी प्रश्रय में अँग्रेजी को जीवन के मूलभूत में इस तरह स्थापित किया गया कि उसके औचित्य को लेकर किसी तरह की शंका न उठे. यह सब ऐसे ढंग से हुआ कि हमें इसकी अस्वाभाविकता का पता तक नहीं चला. अँग्रेजी का वर्चस्व हमारी नियति के साथ ऐसे जोड़ा गया कि उसका कोई विकल्प ही न रहे. हम लाचार होकर उसी का प्रयोग बनाए रखने पर विवश हो गए और इस फाँस से निकलने का कोई मार्ग ही नहीं सूझ रहा है. उदाहरण के लिए पूरे समाज से जुड़ा हुआ न्याय का क्षेत्र लें. आज भी उच्च और उच्चतम न्यायालय के लिए कानूनी कारवाई अँग्रेजी में ही करने की बाध्यता अनिवार्य रखी गई है. लोक तंत्र की आत्मा के विरुद्ध इस व्यवस्था से न्याय पाना (संवैधानिक रूप से!) मँहगा, सबकी पहुँच से बाहर और अनिवार्य रूप से भेद-भाव करने वाला बना हुआ है.

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि राष्ट्र के निर्माण के लिए समाज को उसकी अपनी भाषा के सार्थक और समर्थ उपयोग का अवसर एक स्वाभाविक और अनिवार्य शर्त होती है. जैसा कि हम सब भली-भाँति जानते हैं औपनिवेशिक काल में अँग्रेजी भाषा को प्रशासन, ज्ञान, कानूनी व्यवस्था, स्वास्थ्य आदि जीवन के सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों में स्थापित कर बढावा दिया गया. इस पूरी प्रक्रिया में सहस्राब्दियों पुरानी समूची भारतीय ज्ञान परम्परा को 'पारलौकिक', 'गैर आधुनिक' और इसलिए 'अप्रासंगिक' करार देते हुए विस्थापित और बहिष्कृत-सा कर दिया गया. नई शिक्षा ने ज्ञानार्जन को नौकरी के अधीन कर दिया. अब स्थिति यह हो रही है कि विश्वविद्यालयों से अपेक्षा की जा रही है कि वे उद्योग धंधों से पूछ-पूछ कर पाठ्यक्रम बनाएँ. परीक्षा पास करने के साथ प्लेसमेंट हो इसके लिए यह बेहद जरूरी है. ज्ञानकेंद्र की उत्कृष्टता अंतत: उस केंद्र के छात्रों को मिलने वाले पैकेज पर ही निर्भर करती है.

स्वराज की लड़ाई के बाद देश को राजनैतिक स्वतंत्रता तो मिली पर वैचारिक स्वाधीनता को खो कर. कदाचित् वैचारिक स्वतंत्रता पाना प्रकट रूप में स्वतंत्रता संग्राम का हमारा उद्देश्य भी नहीं था. बापू ने 1909 में लिखित 'हिंद स्वराज' में जरूर सभ्यता-विमर्श करते हुए हमारा ध्यान इस ओर भी खींचा था और तीस साल के बाद उसके दूसरे संस्करण के समय भी अपने विचारों में कोई परिवर्तन लाने की जरूरत नहीं समझी थी परंतु प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने इस तरह की पूरी सोच को ही दकियानूसी मानते हुए सिरे से खारिज कर दिया था और दूसरी ओर आगे बढ गए थे. हमारा मानसिक संस्कार खंडित होता रहा और सोचने-विचारने की उधार की कोटियाँ हाबी हो कर हम पर राज्य करने लगीं. फलतः भारत में उच्च शिक्षा के जो केंद्र विकसित हुए वे ज्ञान की पाश्चात्य धारा को ही श्रेष्ठतर मानते हुए उसे ही अकुंठ भाव से आत्मसात करने में अपनी कृतार्थता समझने लगे. अनेक शिक्षा आयोगों की संस्तुतियों के बावजूद हमारी मानसिक गुलामी की यह प्रवृत्ति बरकरार रही और

हम सभी तरह के मौलिक प्रश्नों से कन्नी काटते रहे और शिक्षा क्षेत्र की समस्याएँ और विकट होती चली गईं. गाँधी जी कहते थे कि 'अँग्रेजी की मोहिनी के वश हो कर हम लोग हिंदुस्तान को अपने ध्येय की ओर आगे बढने से रोक रहे हैं'. वे मानते थे कि 'समूचे हिंदुस्तान के साथ व्यवहार करने के लिए हम को भारतीय भाषाओं में से एक ऐसी भाषा की जरूरत है, जिसे आज ज्यादा से ज्यादा तादात में लोग जानते हों और बाकी लोग जिसे झट से सीख सकें. इसमें शक नहीं कि हिंदी ही ऐसी भाषा है'. देश ने पूज्य बापू की डेढ सौवीं जयंती मनायी है. ऐसे में भाषा के लम्बित सवाल पर विचार करना और औपनिवेशिक मानसिकता से उबर कर अँग्रेजी के घोषित साम्राज्यवाद से मुक्ति उन्हें एक सच्ची कार्यांजलि होगी.

मर्द

चित्रा मुद्गल

"आधी रात में उठकर कहाँ गई थी?" शराब में धुत पति बगल में आकर लेटी पत्नी पर गुर्राया।

आँखों को कोहनी से ढाँकते हुए पत्नी ने जवाब दिया "पेशाब करने!"

"एतना देर कइसे लगा?"

"पानी पी-पीकर पेट भरेंगे तो पानी निकलने में टेम नहीं लगेगा ? "

"हरामिन, झूठ बोलती है? सीधे-सीधे भकुर दे, किसके पास गयी थी ?"

पत्नी ने सफाई दी - "कऊन के पास जाएँगे मौज-मस्ती करने! माटी गारा ढोती देह पर कऊन पिरान छिनकेगा?"

"कुतिया..."

"गरियाव जिन, जब एतना मालुम है किसी के पास जाते हैं तो खुद ही जाके काहे नहीं ढूँढ लेते?"

"बेसरम, बेहया...जबान लड़ाती है ! आखिरी बार पूछ रहे हैं - बता किसके पास गयी थी?

"पत्नी तनतनाती उठ बैठी - "तो लो सुन लो, गए थे किसी के पास। जाते रहते हैं। दारू चढ़ा के तो तू किसी काबिल रहता नहीं... "

"चुप्प हरामिन, मुँह झौंस दूँगा, जो मुँह से आँय-बाँय बकी। दारू पी के मरद-मरद नहीं रहता?"

"नहीं रहता... "

"तो ले देख, दारू पी के मरद-मरद रहता है या नहीं?" मरद ने बगल में पड़ा लोटा उठाया और औरत की खोपड़ी पर दे मारा।...

ऋतुचक्र

मनोरमा तिवारी

पावस की अनुरागी संध्या में
सद्यस्नाता धरती की सोंधी गंध
मेरे मन प्राणों को पुलक से भर रही है,
स्वर्ग से उतरती पीयूषधारा
स्वप्न को साकार करती झर रही है.
फिर धरा से हो रहा है मोह
माटी में पनपता, लिपटता-सा छोह
अति संत्रस्त मन को तृप्ति देता इंद्रजल है
निराश्रित से भटकते विश्वास को
आधार देता बन सबल है.
रत्नगर्भा नाम जिसका, वह धरित्री,
काल के ऋतुचक्र के आदेश से
सप्तरंगों से स्वयं श्रृँगार करती
ग्रीष्म की तपती दुपहरी में
विकल अन्तर से तृषित मनुहार करती.
सृष्टि का वंध्यत्व लखकर
व्यर्थता का भान होता
रत्नगर्भा नाम का संधान होता
पर, तभी बहती पुरबिया
मेघ आषाढ़ी थिरकते
सर्जना के गीत बन कर
शस्य श्यामल शारदा को,
सजल मुक्ताहार देकर.
श्रावणी में अनाहत
जीवन्त आशा छंद रचती
दुग्ध धवला शारदीया में
प्रभासित किरण सजती.

हाँ, क्षणिक है चंद्रिकामय रूप सुंदर
शिशिर की हिमशीत घातों के सहे आघात दुष्कर
चिरअधीरा, क्षीण आशा पर तुषारापात होता
भूमि का अवलम्ब खो, जन सदा ही विश्वास खोता.

भूल मत ओ अबल अन्तर
धैर्य की जड़ है अतल पाताल तक
बहे मलयज मदिर गंधी
मधुर मोहक ऋतु वसंती,
रक्तवर्ण पलाश का सिंदूर माथे पर सजाये
चिरसुहागिन अभयदात्री धरा नूतन गीत गाये.

यही तो हैं श्वेत श्यामल रंग नियति के
कब रुके हैं चक्ररथ के कालगति के
चिरंतन सम्बन्ध मनु का है धरा से
नित नया अनुबन्ध यौवन का जरा से.

प्रतीक्षा है अभी तो उस
काल से निरपेक्ष क्षण की
विपर्यय की रीति मिटकर
फिर पराजय हो मरण की.

स्वयं मृत्युंजय करें अभिषेक
जीवनजयी हो, अमरत्व बरसे
सत्य, सुन्दर सनातन की
ज्योतिधारा सुखद सरसे.

गुलज़ार : मेरे अपने

उमेश मेहता

कोशिश कई बार की गुलज़ार साहब पर कुछ लिखने की पर कामयाबी से दोस्ती न हो पाई. अशफ़ाक़ भाई ने कई बार टोका, इसरार किया - आप भी कहें न कुछ, लिखें ना कुछ भाई के बारे में (गुलज़ार साहब को उनके नज़दीकी ज़्यादातर इसी नाम से पुकारते हैं) जब उनके बारे में इतनी बातें करते हैं. पर क्या भाई पर कुछ कहना या लिखना इतना सरल है, गोया कि कलम उठायी और काग़ज पर हरफ़ों को उकेरना शुरू कर दिया और बन गया लेख – वो भी किस पर – गुलज़ार साहब पर.

पर चीटियों से सबक ले हार नहीं मानी मैंने और नाक़ामयाब होने पर फिर दोबारा लिखना शुरू किया और जैसा बन पड़ा अब आपके सामने है – मेरा अपना मेरे अपने के लिए.

जैसे गुज़रे वक्त के साथ घूमना अच्छा लगता है व उसके साथ बिताये लम्हें बार-बार आपको याद आते हैं, कुछ ऐसा ही मेरे साथ है.

वक्त के समन्दर में हाथ-पाँव मारते जब कभी पीछे मुड़कर देखता हूँ तो बहुत-से पुराने मोड़ों पर ठिठक कर रुक जाता हूँ थोड़ा दम भरने के लिए. 'लम्हों' के साथ की सरगोशियों के साथ जीना मुझे न जाने क्यों अच्छा लगता है चाहे यादें टीस भरी ही क्यों न हों.

गुलज़ार साहब पर लिखने के लिए मुझे बीते वक्त को साथ लेना होगा. मेरी मुलाक़ात इस नाम से बीते वक्त की यादों के साथ से ही है.

पुरानी दिल्ली के बाज़ार सीताराम में रहते हुए मैं स्कूल पढ़ने के लिए दरियागंज जाया करता था. रास्ते में पड़ने वाले डिलाईट सिनेमा पर रुक कर, ठिठक कर वहाँ आने वाली या चल रही तस्वीरों (फ़िल्मों) के बड़े-बड़े पोस्टरों और बैनरों से ज़रूर गुफ़्तगू किया करता था.

शायद नौवीं क्लास में पढता था उस वक्त, डिलाईट सिनेमा हॉल पर एक बड़ा-सा होर्डिंग लगा फ़िल्म 'मेरे अपने' का, उस समय फ़िल्म सिनेमा हॉल में जाकर देखना तो सम्भव नहीं था, पर बाहर लगे पोस्टरों से ही फ़िल्म से रू-ब-रू हो जाते थे. ख़ैर सबसे ज़्यादा उस उम्र में जिसने आकर्षित किया, वो था बड़े से होर्डिंग पर मीना कुमारी का भावपूर्ण चेहरा.

रोज़ का शग़ल स्कूल आते-जाते डिलाईट सिनेमा पर लगे पोस्टरों व होर्डिंग्स में नज़र आते चेहरों से गुफ़्तगू करना. उन्हें अपने ख़्यालों में बसा कर उनके साथ जीना. ख़ैर, उस वक्त 'मेरे अपने' के होर्डिंग में एक और नाम ने मुझे आकर्षित किया वो था बड़ा-सा लिखा 'गुलज़ार'. इस फ़िल्म की चर्चा काफ़ी हुई थी. मुझे अख़बार, रिसाले पढ़ने का शौक़ बचपन से ही था. वहाँ अख़बारों में सभी जगह ज़िक्र था एक नौजवान निर्देशक गुलज़ार व उनकी फ़िल्म 'मेरे अपने' का. वहीं से इस नाम से, इस शख़्सियत से मेरी दोस्ती शुरू हुई.

वक्त अपनी रफ़्तार से चलता रहा, मैं भी नवीं से दसवीं व दसवीं से ग्यारहवीं क्लास में आ गया. और एक बार, सिनेमा हॉल गोलचा, जो मेरे स्कूल के पास ही था, पर एक बड़ा-सा होर्डिंग लगा; फ़िल्म थी 'आनंद' और फिर वहाँ वही नाम 'गुलज़ार'. उस अल्हड़ उम्र में कुछ खूबसूरत से लफ़्ज़ों से वास्ता हुआ और उनमें से एक नाम था – गुलज़ार.

वक्त अपनी आदतानुसार आगे बढ़ा, फ़िल्म लगी 'आँधी'. महसूस हुआ 'आँधी' ने सब कुछ ठहरा दिया जबकि आँधी तो सब कुछ उड़ा ले जाती है. और जब नाम देखा 'गुलज़ार' फ़िल्म के पोस्टरों में तो चल दिये

कनॉट प्लेस के 'ओडियन' सिनेमा की तरफ़ फ़िल्म देखने. कहीं गुलज़ार निर्देशक, कहीं लेखक, कहीं पटकथा व संवाद लेखक, कहीं गीतकार, क्या नहीं. क्या-क्या खूबियाँ नहीं हैं इस शख़्स में, यह महसूस होने लगा.

आगे बढें इससे पहले एक वाक्य ज़रूर लिखना चाहूँगा –

हमारी पुरानी दिल्ली की हवेली में, जहाँ हमारा परिवार लगभग ६० साल रहा, वहीं नीचे की मंजिल में रमेश वर्मा रहते थे. अब तो महरूम हो चुके हैं. मुझसे उम्र में आठ-दस साल बड़े व काफी पढने-लिखने वाले समझदार शालीन व्यक्ति. हम अक्सर उनके साथ बैठते व उनकी बातें बड़े ध्यान से सुनते. एक दिन रात के वक्त किसी गीत पर बात चल रही थी, शायद आँधी तस्वीर का गीत था, तभी उनके मुँह से निकला – क्या आदमी है गुलज़ार, क्या लिखता है, मन करता है इस पर अपनी जान कुर्बान कर दूँ. और यह सब सुनकर मन में ख़्याल आया कि क्या कभी इस इन्सान से मुलाक़ात हो सकेगी.

ख़ैर वक्त बीतता गया. मैं भी ग्रेजुएशन कर काम की तलाश में लग गया. पढने-लिखने का शौक बचपन से ही था सोचा, क्यों न किताबें छापी जाएँ और १९-२० साल की उम्र में ही प्रकाशन से जुड़ गया.

कई बार जागते हुए देखे सपने पूरे हो जाते हैं, वही कुछ हुआ मेरे साथ भी. सन् ८०-८१ में सपनों की नगरी मुम्बई आना हुआ, चित्रा जी (चित्रा मुद्गल) से पत्र-व्यवहार था उनकी पहली पुस्तक 'ज़हर ठहरा हुआ' के प्रकाशन के सिलसिले में. मुम्बई में एक शाम चित्रा जी के घर कला नगर उनसे मिलने पहुँचा. बारिश का मौसम, खुशनुमा-सी शाम, वहीं पर भाई अशफ़ाक़ से मुलाकात हुई.

लगभग रात ८ बजे का वक्त होगा. भाई अशफ़ाक़ ने पूछा – 'सुना है आप चित्रा जी की किताब छाप रहे हैं?'

मैं कुछ कहूँ इससे पहले ही वे पुन: बोले – 'आइये उमेश भाई गुलज़ार साहब के घर चलते हैं.' मुझे तो समझ ही नहीं आ रहा था कि कहूँ क्या? कुछ हिचक भी थी पर मैं कुछ भी रिएक्ट न कर सका. और न जाने कब हम नीचे उतर टैक्सी में बैठ 'बोस्कीयाना' पाली हिल में गुलज़ार साहब के घर आ गए.

मुझे नीचे करीने-से सजे ड्राइंग रूम में बैठाकर अशफ़ाक़ भाई ऊपर चले गए मुझे सपनों में छोड़ और कुछ लम्हों बाद ही वो शख़्सियत मेरे सामने थी, सफ़ेद कुर्ते और सफ़ेद पतलून में सौम्यता से भरपूर, जिससे मिलने के लिए कच्ची उम्र से ही मैंने ख़्वाब बुनने शुरू कर दिए थे. कुछ बन न पड़ा, बस हाथ जोड़कर नमस्ते कहा और महसूस किया कि कभी-कभी सपने भी पूरे हो जाते हैं.

उस दिन से गुलज़ार नाम की शख़्सियत, जो पहले से ही मन में बसी थी, दिल और दिमाग दोनों पर छा गई.

मुम्बई मेरा आना-जाना रहता था और कोशिश रहती थी कि भाई (गुलज़ार साहब) से एक बार आदाब ज़रूर कर आऊँ. 'कोजी होम' (उनका दफ़्तर) में जाना, उनसे मिलना या दिल्ली के अक़बर होटल में उनसे गुफ़्तगू करना या दिल्ली में सर्दियों की गुनगुनी धूप में जनपथ पर उनके साथ चहल-कदमी करना – एक अनुभव रहा है मेरे लिए, जिसे मैं हमेशा सँजो कर रखूँगा व समय-समय पर उसका सुख लूँगा. उनके बारे में क्या कहूँ, शायद ही कोई ऐसा दिन जाता हो जब उनका जिक्र कई बार न आता हो. यह शख़्सियत मुझमें अन्दर तक बसी हुई है, और इसका अहसास मेरे लिए सुखदायक और व्यक्तिगत है.

इस बीच भाई की कई तस्वीरें (फ़िल्में) आईं - कोशिश, मौसम, किनारा, अचानक, मीरा, परिचय, किताब, खुशबू, इज़ाज़त, नमकीन, लेकिन, माचिस आदि, जो बहुत ही सराही गईं. गुलज़ार की फ़िल्मों में कुछ ऐसी बात थी कि लोग लम्बे वक्त तक इन पर बातें किया करते थे और अभी भी करते हैं. फ़िल्म के हर क्षेत्र में ये फ़िल्में अच्छी थीं, साफ़-सुथरी समाज को एक सन्देश देती हुईं व परिवार के साथ देखने लायक, फेंटसी से दूर.

इस बीच गुलज़ार साहब की कुछ किताबें शाया करने की भी मेरी ख़ुशकिस्मती रही. एक किताब 'बोस्की की एकता' पर उन्हें राष्ट्रीय बाल लेखन पुरस्कार से भी नवाज़ा गया. यह मेरे लिए फ़क्र की बात थी.

उनकी लेखनी में जो पकड़ है, वह उन्हें दूसरों से अलग व सबसे अनूठा बना देती है. ज़ुबान की ऐसी मिठास कि दिल में उतर जाए. चाहे वे लिखें गीत फ़िल्मी या कहें कुछ अपनी ग़ैर फ़िल्मी नज़्मों से. हो कहानी या पटकथा, फ़िल्म निर्देशन हो या हो संगीत, सब पर उनकी कुशल पकड़ उनको एक अलग पहचान देती है. 'ग़ालिब' के घर बल्लीमारान (दिल्ली) में जाने की बात हो या न्यूयॉर्क में चींटियों से बातें करना – कुछ है ज़रूर इस शख़्स में जो इसे आम आदमी के दिल में बसा देता है हमेशा-हमेशा के लिए.

लफ़्ज़ों में बाँधना इस शख़्सियत को बहुत मुश्किल है, अतिश्योक्ति न होगी यदि मैं कहूँ कि लफ़्ज़ों से परे है यह शख्स, सन्नाटे की आवाज़ की तरह जो सुनने और महसूस करने वाले को ही सुनाई देती है.

साहित्य व फ़िल्मों से जुड़े लगभग सभी तमगों से उन्हें नवाज़ा जा चुका है. ऑस्कर हो या साहित्य अकादमी पुरस्कार, फ़िल्म-फेयर अवार्ड हो या रास्ट्रीय बाल पुरस्कार. सभी जगह उनकी गरिमामयी उपस्थिति दर्ज है.

मेरी उनसे आख़िरी मुलाक़ात वर्ष ८५-८६ में हुई, लगभग ३२ वर्षों से उनसे मिलना नहीं हुआ है पर कोई लम्हा ऐसा नहीं जाता जब उनकी तस्वीर सामने न हो.

मैं इस शख़्सियत को केवल महसूस कर पाता हूँ, लफ़्ज़ों में शख़्सियत पर कुछ कहना मेरे लिए मुमकिन नहीं.

हाथ छूटे भी तो....

गुलज़ार

हाथ छूटे भी तो रिश्ते नहीं छोड़ा करते
वक्त की शाख से लम्हें नहीं तोड़ा करते

जिसकी आवाज़ में सिलवट हो निगाहों में शिकन
ऐसी तस्वीर के टुकड़े नहीं जोड़ा करते

शहद जीने का मिला करता है थोड़ा थोड़ा
जाने वालों के लिए दिल नहीं थोड़ा करते

लग के साहिल से जो बहता है उसे बहने दो
ऐसी दरिया का कभी रुख नहीं मोड़ा करते

वक्त की शाख से लम्हें नहीं तोड़ा करते
वक्त की शाख से लम्हें नहीं तोड़ा करते....

तोताराम का अर्थ आवर

रमेश जोशी

दो दिन से तोताराम नहीं आ रहा था सो हम ही उसके घर चले गए | देखा तो तोताराम टखने पर क्रेप बेंडेज बाँध कर लेटा है | न आने का कारण तो पता चल गया मगर इस बेंडेज का कारण पूछा तो बोला - ३१ मार्च को ८.३० पर लाइट बंद कर दी थी | जैसे ही गेट का ताला बंद करने गया तो पैर मुड़ गया और आगे का हाल देख ही रहे हो |

हमने कहा - ठीक है, बचत करनी चाहिए मगर ऐसी भी क्या बचत? एक-दो मिनट में कितनी बिजली जल जाती?

कहने लगा - वैसे तो तू बहुत बड़ी-बड़ी बातें करता है लेकिन इतना भी पता नहीं उस दिन 'अर्थ डे' था और अर्थ डे पर पृथ्वी बचाओ वाले एन.जी.ओ. ने ८.३० से ९.३० तक सारे संसार में एक घंटे बिजली बंद रखने की घोषणा की थी | बात पैसे की नहीं है बल्कि इस नष्ट होने के कगार पर खड़ी पृथ्वी को बचाने की है | तू तो अपनी सुख-सुविधा में तनिक-सी भी कमी करना नहीं चाहता | तुझे क्या, पृथ्वी रहे या बचे |

हमने कहा - तोताराम, हम भी पृथ्वी क्या, समस्त ब्रह्माण्ड से उतना ही बल्कि अधिक प्यार करते हैं जितना कि तुम्हारे ये 'अर्थ डे' वाले | हाँ, यह बात और है कि हमारे पास कोई मीडिया नहीं है सो हमारे प्रयत्नों का किसी को पता नहीं चलता | और जिन लोगों को तू पृथ्वी को बचाने की जिम्मेदारी उठाए देख रहा है वे ही इस पृथ्वी के विनाश का कारण हैं | अमरीका विकासशील देशों को कार्बन उत्सर्जन कम करने के लिए दबाव डाल रहा है लेकिन खुद सबसे ज्यादा कार्बन उत्सर्जन करता है | १५० ट्रिलियन कैलोरी जितना भोजन अमरीका में जूठन के रूप में व्यर्थ कर दिया जाता है | क्या उसमें ऊर्जा नहीं लगती? अमरीका में घरों के आगे-पीछे लगे लॉन्स का क्षेत्रफल कोई डेढ़ लाख किलोमीटर है जिसमें घास उगाने और सँवारने में सोचो कितनी बिजली और पेट्रोल जलता होगा | और नाटक अर्थ आवर का |

तोताराम कहने लगा - देख, बूँद-बूँद से घड़ा भरता है और बूँद-बूँद रिसने से रीत जाता है | राम जब पुल बना रहे थे तो एक गिलहरी भी अपनी पूँछ समुद्र में डुबोती और फिर बाहर आकार उसे छींट देती और फिर पूछ गीली करती | यही क्रिया वह बहुत देर से दुहरा रही थी | भगवान राम ने बड़े प्यार से उसे पूछा कि वह क्या कर रही है? तो कहने लगी कि मैं इस समुद्र को ऐसे ही सुखा दूँगी | राम मुस्कराए और प्यार से उसकी पीठ पर हाथ फेरा | तो हम भी उस गिलहरी की तरह अपव्यय के इस समुद्र को सुखाने का प्रयत्न कर रहे हैं |

खुद सारे संसाधनों का दुरुपयोग करने वाले चतुर लोग, पृथ्वी को बचाने की हमारी यह बचकानी कोशिश करके धन्य होने की मूर्खता पर अंदर ही अंदर हँस रहे होंगे | वे जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं ? और फिर भी ईश्वर उन्हें माफ कर रहा है | खुद ही दुनिया के जंगलों को काट कर हमें वनमहोत्सव में उलझा रहे हैं |

हम कहाँ कोई हरा क्या, सूखा पेड़ भी काट रहे हैं | नेता खुद अपने कमीशन के लिए अपने देशों के संसाधन बेचे जा रहे हैं और जनता को मितव्ययिता का उपदेश दे रहे हैं |

और जहाँ तक बिजली की बात है, हम तो बिजली क्या, किसी भी साधन का बहुत सँभल-सँभल कर उपयोग करते हैं | हमें तो जो कुछ भी उपभोग करते हैं उसका पूरा पैसा देना पड़ता है | नेताओं से पूछ कि उनके बँगलों और फार्म हाउसों में कितनी फालतू बिजली जलती है ? क्यों, क्योंकि या तो उन्हें बिजली मुफ्त मिलती है या फिर चोरी करते हैं | क्यों बिजली द्वारा ज़मीन से खींचा हुआ बेशकीमती पानी स्विमिंग पूलों में भर कर तैरते रहते हैं जब कि देश डूब रहा है और खेत, पशु-पक्षी प्यासे हैं | मुकेश अम्बानी से पूछ कि क्या वह बिजली बनाता है जो एक महीने में अपने नए बँगले में ७० लाख रुपए महीने की बिजली फूँक देता है?

तोताराम बोला - वह कोई बिजली चोरी थोड़े ही करता है वह तो पूरे पैसे देता है |

हमने कहा - तो कागज के टुकड़ों से बिजली बनती है क्या? बिजली बनाने में इस धरती के बहुमूल्य संसाधनों का उपयोग होता है और वे संसाधन किसी एक की बपौती नहीं हैं उन पर इस दुनिया के सभी लोगों का अधिकार है | मान ले कोई व्यक्ति कहे कि उसके पास बहुत पैसा है | वह सारी दुनिया का गेहूँ खरीद कर समुद्र में फेंक देगा तो क्या यह उचित है ? किसान गेंहूँ खाने के लिए उगाता है न कि समुद्र में फेंकने के लिए | रोटी खाने के लिए है न कि खेलने के लिए | अरे, यदि यह दुनिया बची हुई है तो हम ग़रीबों के कारण जिनके पास इस दुनिया को निचोड़ने के साधन नहीं है | यदि इस दुनिया में सारे ही धनी होते तो पता नहीं, ये कब का इस दुनिया को चूस कर खत्म कर देते | धर्म और सत्कार्य किसी एक दिन का नाटक नहीं होते वे तो हमारी जीवन शैली होने चाहिएँ तभी उसका लाभ दिखेगा | अच्छी बातें या तो शतप्रतिशत होती हैं या फिर बिलकुल नहीं | ये ऐसे ही नाटक हैं जैसे कि जब किसी यूरोपीय या अमरीकी सुन्दरी की कपड़े उतारने की इच्छा होती है तो कह देती है कि वह पशु क्रूरता के विरुद्ध नग्न होकर प्रदर्शन कर रही है | अरे, माँस खाना छोड़ दो अपने आप बूचड़ खाने बंद हो जाएँगे | चिल्लाएँगे - विदेशी ब्रांड के ठंडे पेयों में केंसर कारक पदार्थ मिले हुए हैं | तो किसने कहा है कि पियो | छोड़ दो | गाँधी वाला उपाय ही चलेगा |

चतुर लोग हमें 'अर्थ आवर' में उलझा कर अनर्थपूर्वक अपनी अर्थ सिद्धि करने में लगे हैं | आँख खोल कर रहो | साधारण आदमी के लिए तो चाहे एक घंटे का अर्थ आवर हो या वर्तमान हो या भविष्य हो, अंधकार पूर्ण ही है | सावधानी से टटोल-टटोल कर चलो नहीं तो पैर ही क्या सिर और कमर भी तुड़वा बैठोगे |

खैर, चल उठ | बैंक चल कर पता कर लें कि नया डी.ए. पेंशन में जुड़ गया कि नहीं ?

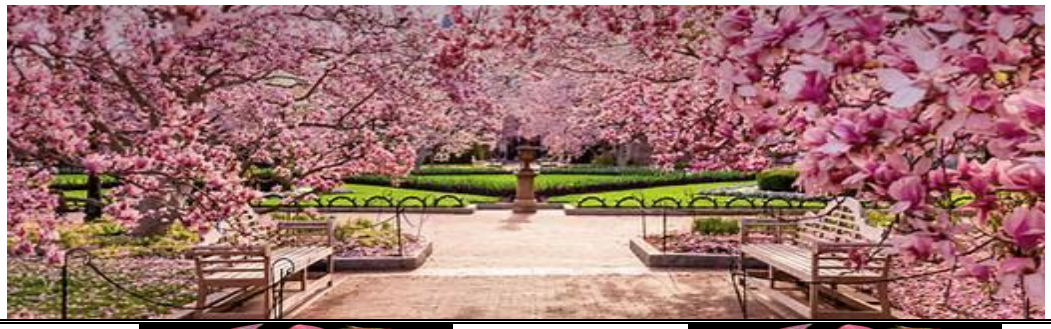

डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार

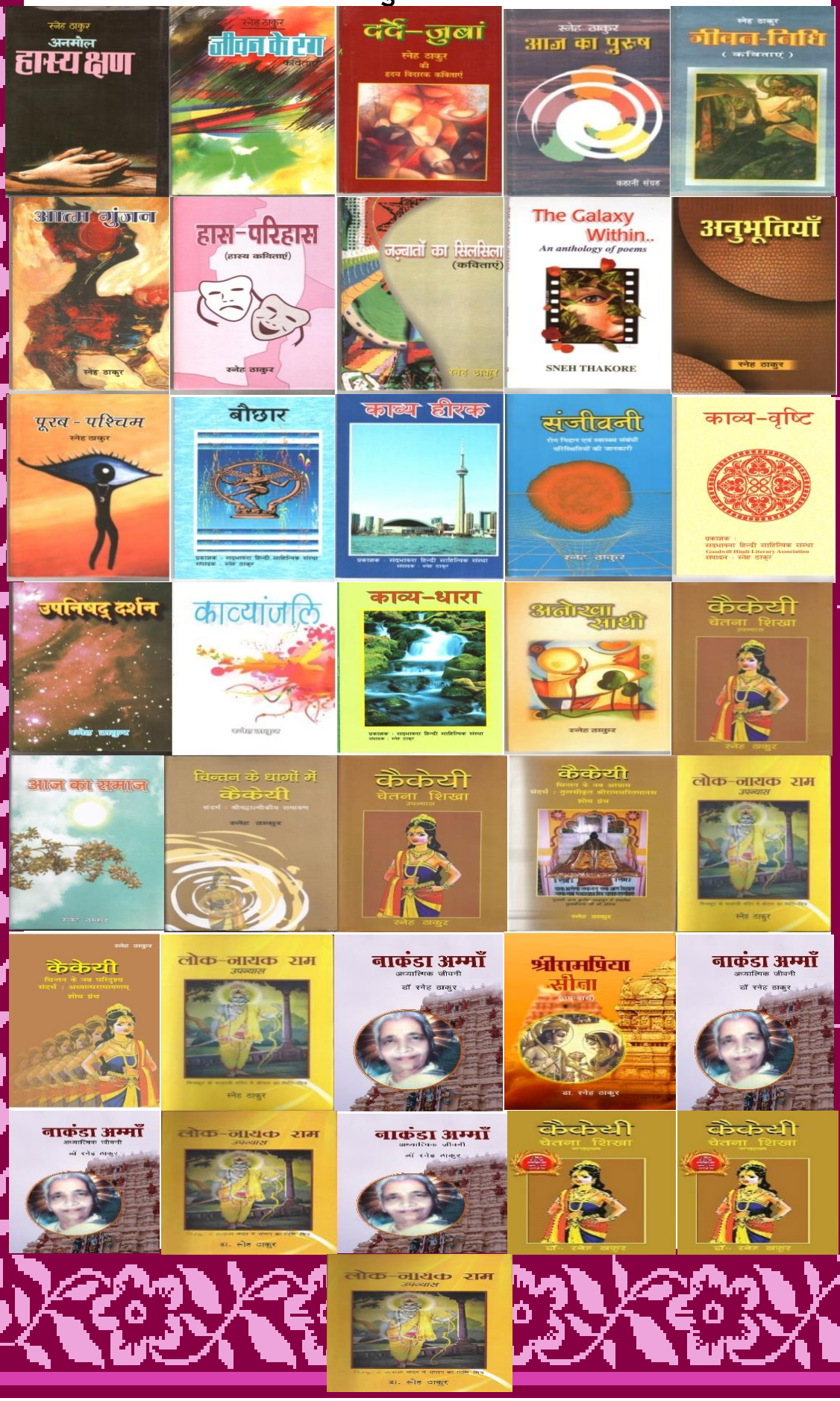

डॉ. स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

दशानन रावण	(उपन्यास)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, चतुर्थ संस्करण)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, चतुर्थ संस्करण)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, चतुर्थ संस्करण)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, द्वितीय संस्करण)
श्रीरामप्रिया सीता	(उपन्यास)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण)
कैकेयी : चिन्तन के नव परिदृश्य -	संदर्भ : अध्यात्मरामायण (शोध-ग्रन्थ)
लोक-नायक राम	(उपन्यास)
कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम -	संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस (शोध-ग्रन्थ)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, द्वितीय संस्करण)
चिन्तन के धागों में कैकेयी -	संदर्भ : श्रीमदवाल्मीकीय रामायण (शोध-ग्रन्थ)
आज का समाज	(सामाजिक लेख-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
काव्य-धारा	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
उपनिषद दर्शन	(दार्शनिक एवं अध्यात्मिक)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धो आलेख)
काव्य हीरक	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
बौछार	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	**(A collection of English poems)**
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
आत्म-गुंजन	(अध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संगह, फेडरल गवर्नमेन्ट, कैनेडा द्वारा अधिकतम अनुदान से सम्मानित)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड, नई दिल्ली - ११०००२, भारत
Star Publishers' Distributors, 55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW, England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित